प्रकाशक—
राजमल बडजात्या मत्री,
मुनिअनतकीर्तिग्रथमाला
कालबादेवी रोड बम्बई ।



मुद्रक—
मगेश नारायण कुळकर्णी,
कर्नाटक प्रेस, ४३४,
ठाकुरद्वार, बम्बई ।

श्री वीतरागायनम

नियमावली।

मुनि श्री अनन्तकीर्ति ग्रंथमाला।

१ यह ग्रन्थमाला श्री अनन्तकीर्ति मुनिकी स्मृतिमें स्थापित हुई है जो दक्षिण कनड़ाके निवासी दिगम्बर साधु चारित्रके तत्व ज्ञानपूर्वक पालनेवाले थे और जिनका देहत्याग श्री गो० दि० जैन सिद्धान्त विद्यालय मुरैना (ग्वालियर) हुआ था।

२ इस ग्रन्थमाला द्वारा दिगम्बर जैन संस्कृत व प्राकृत ग्रन्थ भाषाटीका सहित तथा भाषाके ग्रन्थ प्रबंधकारिणी कमेटीकी सम्मतिसे प्रकाशित होंगे।

३ इस ग्रन्थमालामें जितने ग्रन्थ प्रकाशित होंगे उनका मूल्य लागत मात्र रक्खा जायगा लागतमें ग्रन्थ सम्पादन कराइ संशोधन कराई छपाई जिल्द बधाई आदिके सिवाय आफिस खर्च भाड़ा और कमीशन भी शामिल समझा जायगा।

४ जो कोइ इस ग्रन्थमालामें रु १००) व अधिक एकदम प्रदान करेंगे उनको ग्रन्थमालाके सब ग्रन्थ विनान्योछावरके भेट किये जायगे यदि कोई धर्मात्मा किसी ग्रन्थकी तैयारी कराइम जो खर्च परे वह सब देवेंगे तो ग्रन्थके साथ उनका जीवन चरित्र तथा फोटो भी उनकी इच्छानुसार प्रकाशित किया जायगा यदि कमती सहायता देंगे तो उनका नाम अवश्य सहायकोंमें प्रगट किया जायगा इस ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित सब ग्रन्थ भारतके प्रान्तीय सरकारी पुस्तकालयोंमें व म्यूजियमोंकी लायब्रेरियोंमे व प्रसिद्ध २ विद्वानों व त्यागियोंको भेटस्वरूप भेजे जायगे जिन विद्वानोंकी संख्या २५ से अधिक न होगी।

५ परदेशकी भी प्रसिद्ध लायब्रेरियों व विद्वानोंको भी महत्वपूर्ण ग्रन्थ मंत्री भेट स्वरूपमें भेज सकेंगे जिनकी संख्या २५ से अधिक न होगी।

६ इस ग्रन्थमालाका सर्व काय एक प्रबंधकारिणी सभा करेगी जिसके सभासद ११ व कोरम ५ का रहेगा इनमें एक सभापति एक कोषाध्यक्ष एक मंत्री तथा एक उपमंत्री रहेंगे।

७ इस कमेटीके प्रस्ताव मंत्री यथा संभव प्रत्यक्ष व परोक्ष रूपसे स्वीकृत करावेंगे।

८ इस ग्रन्थमालाके वार्षिक खर्चका बजट बन जायगा उससे अधिक केवल १००) मंत्री सभापतिकी सम्मतिसे खर्च कर सकेंगे।

९ इस ग्रन्थमालाका वर्ष वीर सम्वत्से प्रारम्भ होगा तथा दिवाली तककी रिपोर्ट व हिसाब आडीटरका जचा हुआ मुद्रित कराके प्रति वर्ष प्रगट किया जायगा।

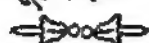
१० इस नियमावलीमें नियम न १-२-३ के सिवाय शेषके परिवर्तनादि पर विचार करते समय कमसे कम ९ महाशयोंकी उपस्थिति आवश्यक होगी।

श्री दि० जैन मुनि अनंतकीर्तिग्रंथमालाके मुख्यसहायक महाशय।

२२०२) सेठ गुरुमुखरायजी सुखानंदजी बम्बई
  ११०१) मुनिमहाराजके आहार दान समय
  ११०१) यात्रार्थ आये हुए दिल्लीके संघके समय
११०१) से हुकमचंदजी जगाधरमलजी दिल्ली
११०१) से उम्मेदसिंहजी मुसद्दीलालजी-अमृतसर
५०१) श्री जैनग्रंथरत्नाकरकार्यालय-बम्बई
४११) श्री धर्मपत्नी लाला रायबहादुर हजारीलालजी दानापुर
२५१) से नाथारामजी वाडे-बम्बई
२०१) से खुशालदास हेमचंदजी बम्बई
१०१) साहु सुमतिप्रसादजी-नजीबाबाद
१०१) लाला जुगलकिशोरजी-हिसार
१०१) श्री जैनधर्मवर्धिनी सभा बम्बई।
१०१) राजमलजी बड़जात्या बम्बई।
१०१) से बैजनाथजी सरावगी हाथरस।
१०१) से कस्तूरचंद नेमचंदजी बम्बई।
१०१) लाला जैनेन्द्रकिशोरजी।

ठि—उत्तमचंद भरोसालाल-आगरा।

भूमिका ।



ग्रन्थकर्ताओंका परिचय



स्वामी समन्तभद्राचार्य

मरुद्दर्शनपादपपारिजात अनवद्य अनाद्यनिधन इस दिगम्बर जैन सम्प्रदायमें तीर्थेश भगवान् श्री १००८ महावीरस्वामीजीके मोक्ष गये बाद वीरप्रभुके भवहितकर शान्तिप्रद धर्मका प्रचार करने वाले अनेक प्रतिभाशाली महर्षि तथा विद्वान् ऐसे हो गये हैं कि जिनके वाक्य तथा कृत्य कलिकालमें उस तीर्थंकरके पूर्ण उद्बोधक हैं। क्योंकि उन्होंने भगवानके शीतल सौम्य सुगन्ध सिद्धान्तका प्रसार उस खूबीके साथ किया है कि जिस तरह मलय चन्दन सुगन्धिका दक्षिण वायु करता है उन ऋषियोंमें प्रभुधर्मके यथार्थ प्रवर्तक अनेक ऋषियोंके बाद श्री स्वामी समन्तभद्राचार्यजी एक ऐसे प्रतिभाशाली विद्वान् होगये हैं कि जिनकी कृति तथा अतिशयपाण्डित्यप्रतिभाप्रभावके गौरवका प्रायः सबही प्रतिभाशाली ऋषि तथा विद्वानोंने बहुतही स्तुत्य प्रणामके साथ कीर्तन किया है। जैसे कि महा अकलंकदेवजी तथा स्वामी विद्यानन्दजीने अपने अष्टशती तथा अष्टसहस्री ग्रन्थमें मंगलरूप पद्यों द्वारा स्वामीजीको वर्द्धमान भगवान्के विशेषणमें निवेशित कर भगवान् सदृशही नमस्कार भाव प्रदर्शित किया है। जैसे कि—

श्रीवर्द्धमानमकलङ्कमनिन्द्यवन्द्य—
पादारविन्दयुगलं प्रणिपत्य मूर्ध्ना ।
भव्यैकलोकनयनं परिपालयन्तम्
स्याद्वादवर्त्म परिणौमि समन्तभद्रम् ॥

(अष्टशति)

श्रीवर्द्धमानमभिवन्द्यसमन्तभद्र-
मुद्भूतबोधमहिमानमनिन्द्यवाचम् ।
शास्त्रावताररचितस्तुतिगोचराप्त-
मीमांसितं कृतिरलङ्क्रियते मयास्य ॥

श्रेय श्रीवर्द्धमानस्य परमजिनेश्वर-
समुदयस्य समन्तभद्रस्येत्यादि,

(अष्टसहस्री)

अमोघवर्ष राजाके गुरु श्री जिनसेनजीने आपको महान् कवियोंमें ब्रह्मा तथा चार प्रकारके कवियोंके मस्तकमें भूषणरूपसे विराजमान सामन्तभद्रीय यशको चूड़ामणिरत्नकी महनीयतामें निवेशित कर साधु साधकताका परिचय दिया है।

नमः समन्तभद्राय महते कविवेधसे।
यद्वचो वज्रपातेन निर्भिन्नाः कुमताद्रयः॥
कवीनां गमकानां च वादिनां वाग्मिनामपि।
यशः सामन्तभद्रीयं मूर्ध्नि चूड़ामणीयते॥

(आदि पुराण)

महाकवि श्री वादीभसिंहजीने इनको साक्षात् सरस्वती की मुख्य विहार-भूमिरूप वर्णनकर आपके अतिशय पाण्डित्यको प्रदर्शित किया है।

सरस्वतीस्वैरविहारभूमयः समन्तभद्रप्रमुखामुनीश्वराः।
जयन्ति वाग्वज्रनिपातपाटितप्रतीपराद्धान्तमहीध्रकोटयः॥

(गद्यचिंतामणि)

कवि श्री वीरनंदिजी महाराजने पुरुषोत्तमके कण्ठको सुशोभित करनेमें आभूषणभूत माणिक्यमालाके समान इनकी वाणीकी दुर्लभताको विशेषतासे वर्णन इस प्रकार लिखा है

गुणान्विता निर्मलवृत्तमौक्तिका
नरोत्तमैः कण्ठविभूषणीकृता।
नहारयष्टिः परमेव दुर्लभा
समन्तभद्रादिभवा च भारती॥

(चन्द्रप्रभचरित्र)

श्री शुभचन्द्राचार्यजीने इनके वचनोंको अज्ञानान्धकार निवृत्तिके लिये सूर्य किरणोंके समान तथा इनके सामने दूसरोंको हास्यताके पात्र खद्योत समान कहा है।

समन्तभद्रादिकवीन्द्रभास्वतां
स्फुरन्ति यत्रामलसूक्तिरश्मयः।

व्रजन्ति खद्योतवदेव हास्यता
न तत्र किं ज्ञानलवोद्धताजना ॥

(ज्ञानार्णव)

वसुनंदि सिद्धान्त चक्रवर्तिने समंतभद्र सम्बधि मतकी तथा स्वामीजीको बडे ही निवाध निर्दोष भद्र विशेषणोंद्वारा नमस्कार कर आपने अपना बहुतही स्तुत्य मनोज्ञ उद्गारता दिखलाई है।

लक्ष्मीभृत्परमं निरुक्तिनिरतं निर्वाणसौख्यप्रदं
कुज्ञानातपवारणाय विधृतं छत्रं यथा भासुरम् ।
सज्ज्ञानैर्नययुक्तिमौक्तिकरसैः संशोभमानं परं
वन्दे तद्धतकालदोषममलं सामन्तभद्रं मतम् ॥
समन्तभद्रदेवाय परमार्थविकल्पिने ।
समन्तभद्रदेवाय नमोस्तु परमात्मने ॥ (आप्तमीमांसा वृत्ति)

1 मल्लिषेण प्रशस्तिमें—आपकी किस जगह कैसी अवस्था रही तथा आपके निर्भीकपांडित्यम उत्कटवादीपना, और भस्मकसरीखे भयङ्कर रोगके नाश करनेमें दक्ष, पद्मावती सरीखेदेवताद्वारा सम्मानित, भक्तिविशिष्ट मन्त्ररूपवचनोंद्वारा चन्द्र प्रभ प्रतिबिंबको प्रगट कर असंभवतामें भी संभवताका प्रगट परिचय दिया, जैनमार्गकी सर्व कल्याणकारी प्रभावना प्रगट की, पटना मालव सिंध ढाका आदि देश नगर विजेता, तथा जिनकी शक्तिप्रभावसे शक्ति प्रभव जिह्वाप्रभा भी कुंठित हो जाती थी, इत्यादि विशेषतासे विशेष वर्णन है। जैसेकि—

काञ्च्यां नग्नाटकोऽहं मलमलिनतनुर्लाम्बुसे पाण्डुपिण्डः,
पुण्ड्रोण्ड्रे शाक्यभिक्षुर्दशपुरनगरे मिष्टभोजी परिव्राट् ।
वाराणस्यामभूवं शशधरधवलः पाण्डुरागस्तपस्वी,
राजन् यस्यास्ति शक्तिः स वदतु पुरतो जैननिर्ग्रन्थवादी ॥ १ ॥
वन्द्यो भस्मकभस्मसात्कृतिपटुः पद्मावतीदेवता—
दत्तोदात्तपदः स्वमंत्रवचनव्याहूतचन्द्रप्रभः ।
आचार्यः स समन्तभद्रयतिवद्येनेह काले कलौ
जैनं वर्त्म समन्तभद्रमभवद्भद्रं समन्तान्मुहुः ॥ २ ॥
पूर्वं पाटलिपुत्रमध्यनगरे भेरी मया ताडिता
पश्चान्मालवसिन्धुठक्कविषये काञ्चीपुरे वैदिशे ।

प्राप्तोऽहं करहाटकं बहुभटं विद्योत्कटं सङ्कटम्
वादार्थी विचराम्यहं नरपते शार्दूलविक्रीडितम् ॥ ६ ॥
अवटुतटमटति झटिति स्फुटपटुवाचाटधूर्जटेरपि जिह्वा
वादिनि समन्तभद्रे स्थितवति तव सदसि भूप कान्येषाम् ॥ ४ ॥
(श्रीमल्लिषेण प्रशस्ति)

स्वामीजीके विषयमें और भी अनेक विद्वानोंने भव्यभावुक बहुतही उद्गार प्रगट किये हैं वे सभी स्वामीजीके याथातम्य गुणके प्रदर्शक हैं। इन सब प्रमाणोंसे यह सहजही समझमें आजाता है कि स्वामीजीमें एक अनोखीही विद्युतविद्वच्छटा थी ये स्वामी जैसे दार्शनिक तथा स्तुतिकार विद्वान हो गये हैं वैसेही दार्शनिक तथा स्तुतिकार सिद्धसेन दिवाकर भी दिगम्बराम्नायमें प्रतिभाशाली विद्वान् हो गये हैं। इनका समय विद्याभूषण एम ए आदि पद धारक शतीशचन्द्रजी वगैरे ने ईसाकी ६ ठी शताब्दी निर्णीत कर लिया है। तथा इनका यशोगान भी इसाकी छठी शताब्दी के बाद आचार्य जिनसेनादि द्वारा मिलता है। ये आचार्य यद्यपि प्रतिभाशाली श्रीसमन्तभद्रके ही समान विद्वान थे परन्तु जैसा शुभ स्तुतिगान स्वामी समन्तभद्राचार्यजीका उनके पीछेके महर्षि तथा विद्वानों द्वारा कीर्तन किया गया बाहुल्यतासे मिलता है वैसा श्री सिद्धसेन दिवाकरजीका नहीं मिलता इस लिये यह स्पष्ट सिद्ध है कि उनके पीछेके कुछ एक विद्वान् उनकी पंक्तिमें गिने जानेपर भी उनके समान नहीं थे।

इसका हेतु यही है कि स्वामीजी उत्सर्पिणीकालकी भविष्य चौवीसीमें भरत-क्षेत्रके तीर्थंकर होनेवाले हैं। जो प्राणी थोडेही समयमें तीर्थंकर होनेवाला है उसका माहात्म्य तथा उसकी विद्वत्ता अपूर्वही हो तो इसमें आश्चर्य भी किस बातका। स्वामीजी भविष्यमें तीर्थंकर होनेवाले हैं इस विषयमें उभयभाषा कवि चक्रवर्ति श्री हस्तिमल्लजी इस प्रकार लिखते है।

श्री मूलसंघव्योम्नि दुर्मोरेन्दुर्भाति तीर्थकृत्।
देशे समन्तभद्राख्यो मुनिर्जीयात् पदर्द्धिक ॥

इस पद्यसे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि आप मूलसंघके आचार्य थे। सेन संघका जो आपको विद्वान् लोग लिखते हैं उसका हेतु यही है कि सेनसंघ मूल

संघके चार भेदोंमेंसे एक भेद है। स्वामीजी उरगपुरके राजाके पुत्र थे और जन्मका खास नाम उनका शान्तिवर्मा था समन्तभद्र शायद इस नामका विशेषणरूपसे नाम हो, अथवा दीक्षाके बादमें समन्तभद्र नाम रखा गया हो। जो कि स्वामीजीके बोध करानेमें अभी यही प्रसिद्ध है।

ग्रंथलेखन शैली

आप्तमीमांसा तथा रत्नकरण्डश्रावकाचारके देखनेसे मालूम पड़ता है कि आपकी ग्रंथलेखन शैली समुद्रको घड़ेमें भरनेकी कहावतको वास्तविक चरितार्थ करती है। उसी शैलीपर वृहत्स्वयंभूस्तोत्र, चतुर्विंशतिस्तव, युक्त्यानुशासन आदि ग्रंथ भी हैं।

विषय पांडित्य

दर्शन, सिद्धान्त, साहित्य, व्याकरण, आदि सभी विषयमें आपका अपूर्व पांडित्य था क्योंकि दर्शन विषयके पांडित्यमें आपका आप्तमीमांसा ग्रंथ प्रसिद्ध ही है। सिद्धान्तमें जय धवला, तथा साहित्यमें चतुर्विंशतिस्तव है इस ग्रंथमें एकाक्षरी चमरी चित्रबन्धता आदि साहित्य कला द्वारा साहित्य विषयके पांडित्यकी हृद्रूप अद्भुत तथा अनोखी छटासे प्रदर्शित किया है। तथा व्याकरणमें भी समन्तभद्र नामका आपका किया हुआ व्याकरण है। जिसका कि उल्लेख पूज्यपाद स्वामीजीने प्रमाणभूततासे किया है।

संक्षेपमें हमें यही कहना है कि आपकी सब विषयमें अप्रतिहत शक्ति थी क्योंकि इनके ये सर्व ग्रंथ देखनेसे यह बात सहजहीसे समझमें आजाती है। तथा इस विषयमें विशेषतासे उसी समय पता लगेगा जब कि आपका ग्रंथराज गंधहस्त महाभाष्य जब कभी कहीं मिले।

आपमें भगवत विषयक स्तुति परायणता तथा शासनत्व है वह यद्यपि युक्तिमार्गकी प्रधानतासे है तथापि उसमें सर्वज्ञ मार्गका पूर्ण अनुगामीपन है।

शास्त्रकारोंने जो परीक्षा प्रधानतासे वर्णन किया है वह भक्ति प्रधानताके साथ शक्तिकी पूर्णतामें ही कीया है। जिस जगह यह कारण सामीग्री सांगोपांग है उस जगह स्वामी समन्तभद्रके समान स्तुतिके साथ स्वपरहितपना है। अन्यथामें सिर्फ आकाशके फूलों की कल्पना है।

---

१ उरगपुरसे शायद नागपुर लिया गया हो।

इनसब विषयोंसे पता चलता है कि स्वामीजीके पांडित्यमें हरएक विषयमें पूर्ण दक्षता थी।

श्रीमद्‌ वादिराजसूरिने स्वामीके खास २ ग्रंथ विषयक चमत्कृतिरूप पा[illegible] त्यमें कितनी उत्कृष्ट भक्तिके साथ कितनाही मनाप स्तुतिगान किया है

स्वामिनश्चरितं तस्य कस्य नो विस्मयावहम्।
देवागमेन सर्वज्ञो यनाद्यापि प्रदर्श्यते॥ १॥
अचिंत्यमहिमादेव सोऽभिवन्द्यो हितैषिणा।
शब्दाश्च येन सिद्ध्यन्ति साधुत्वं प्रतिलम्भिता॥ २॥
त्यागी स एव योगीन्द्रो यनाक्षय्यसुखावह।
अर्थिने भव्यसार्थाय दिष्टो रत्नकरण्डक॥ ३॥

(पार्श्वचरित्र प्रथमसर्ग)

इन तीनों श्लोकोंमें दर्शन व्याकरण आचार, विषयक इन तीनग्रंथों द्वारा जो स्वामीजीका विशेष महत्व वर्णन किया गया है वह इन तीनों ग्रंथोंकी विशेष उत्कृष्टतासे ही है। क्योंकि स्वामीके ये ग्रंथ रत्न ऐसे ही हैं।

समय

समय निर्णयमें बहुतसे विद्वानोंका मत है कि स्वामीजीने पहली या दूसरी विक्रम शताब्दिमें अपने चरणरजसे इस भारत वसुंधराको पवित्रित किया था। विद्याभूषणादि अनेक पद धारक शतीशचन्द्रजीने उमास्वामीजीको इसाकी प्रथम शताब्दिका निर्णय किया है।

स्वामी समन्तभद्राचार्यजीने उमास्वामिकृत तत्वार्थमोक्षशास्त्र सूत्रपर गंधहस्त महाभाष्य नामकी एक विस्तृत टीका लिखी जिसकी कि अनुष्टुप श्लोक प्रमाण चौरासी ८४००० हजार संख्यासे प्रख्यात है। यह टीका इस समय भाग्य दोषसे उपलब्ध नही है तथापि यह ग्रंथ अवश्य था और इसके प्रणेता स्वामीजी थे। इस विषयमें जिनका विपरीत विचार है व वास्तवमें हवाई महल चिननेके समान विपरीत मार्गपर हैं। इस विषयका निर्णय पाठक इस भूमिकाके ग्रंथ **परिचय** विषयसे करें।

चतुष्टयं समन्तभद्रस्य इस व्याकरण जैनेन्द्रसूत्र द्वारा भगवान् स्वामी समन्तभद्रका नामोल्लेख श्री पूज्यपाद स्वामीजीने किया है। स्वामी पूज्यपादजीका भाषा निरुद्ध चरित्रसे शकाब्द साढ़े पाच सौ मिलता है। इस

परसे यह निर्णय हो जाता है कि या तो ये पहली शताब्दिके विद्वान् हैं या उसके पीछेके परंतु कुछ एक विद्वानोंने विक्रमकी १२५ वीं शताब्दिमें आपका होना निश्चित किया है इस परसे भी आपका पहली या दूसरी शताब्दिसे बाह्य समय नहीं जाता किंतु यही समय आजाता है। विशेष निर्णय अवकाश मिलने पर हम फिर कभी करेंगे—अन्यविद्वान् भी कर तो जैनायइतिहासमें विशेष सुभीता हो।

प. जयचंद्रजी छावडा।

विक्रम १९०० की शताब्दिमें माननवर प. टोडर मलजीके समान खंडेलवाल कुलभूषण पंडित जयचंद्रजी छावडा एक उत्तम प्रतिभाशाली विद्वान् हो गये हैं। उन्होंने अष्टसहस्री वगैर के आधारसे इस आप्तमीमांसाकी जो भाषा की है वह बहुतही मनोज्ञ है वह न्यायचञ्चु प्रवेशी देशभाषा जाननेवालोंको भी बहुत उपयोगी है। इसी तरह आपने न्याय आध्यात्मस्वरूप अन्यग्रंथोंपर भी विशेष रूपसे टीकायें लिखी हैं जिसका विस्तार वार विवरण हम प्रमेयरत्नमालाकी भूमिकामें लिख चुके हैं जो कि इस ग्रंथके साथही साथ इस ग्रंथमालासे प्रकाशित हो चुकी है। उक्त पंडितजी साहबने जो सर्वार्थसिद्धि–प्रमेयरत्नमाला वगैर की जो टीकायें तथा फुटकर वीनतियों वगैर की रचनायका है उससे साफ जाहिर होता है कि पंडितजीका पांडित्य बहुतही देश समयानुकूल था। तथा वर्तमान भविष्यमें भी उसी प्रकार उपयोगिता रूपसे परिणत रहेगा। इन ग्रंथोंके देखनेसे पता लगता है कि पंडितजीने अनेक ग्रंथोंका स्वाध्याय व मनन किया था इसीसे आपमें विशेष ज्ञान विकाशकी विशेष छटा थी। पंडितजीने किन २ ग्रंथोंका विशेष रूपसे अध्ययन किया है इसका ब्यौरा उन्होंने खुद अपने सर्वार्थसिद्धि देशवचनिका प्रथमें किया है। उससे पाठकगण खुद निर्णय कर सकते हैं तथा उपयोगिता होनेमें सावकाश मिलनेपर हम फिर कभी लिखेंगे।

पंडितजी ढुंढाहड देश जयपुर नगरके रहनेवाले थे। आपने इस ग्रंथकी टीका समाप्ति विक्रमसम्वत् १८६६ चैत्र कृष्ण १४ के दिन की है।

आपके विषयका विशेष विवरण प्रमेयरत्नमालाकी भूमिकामें हम लिख चुके हैं तथा सुभीता मिलनेपर सामिग्रीके मुआफिक अगाडी अष्ट पाहुड वगैर की भूमिकामें भी लिखेंगे॥

ग्रंथपरिचय ।

यह आप्तमीमांसा (देवागम) नामका ग्रंथ अनुष्टुप श्लोक संख्यामें ११४ प्रमाण मात्र है परंतु आशयमें यह जलाशय (समुद्र) की उपमाको लिये हुए है। यद्यपि यह ग्रंथ भगवत् स्तुतिरूप है तथापि भगवत स्वरूपके ज्ञान विशेषमें साक्षात् एक अपूर्वही सिद्ध शक्ती है जिसके द्वारा कि भाग्यशाली पुरुषकी ईश्वरीय ज्ञानविषयक आकांक्षा पूर्णरूपमें पूर्ण हो जाती है। तथा विद्वान् कलाम इससे पूर्वापरके पूर्णचंद्रकी शक्ति जाग्रत होती है इस ग्रंथकी वृत्ति अष्टशती तथा अष्टसहस्री टीकाओंका पत्थर यह मन्त्र रूपमेंही समझमें आ जाता है कि यह ग्रंथ स्तुतिरूप होकर भी दर्शन विषयका एक खानि स्वरूप प्रधान अंग है क्योंकि इसमें मताभास निराकरण(वादों)के साथ असलीयत तत्वकी सूची इस सूचीके साथ वर्णन की गई है कि जिसकी सादृश्यता शायदही कहीं हो। विषय प्रधानतासे यह ग्रंथ दश परिच्छेदोंमें विभक्त है। जिसका कि परिचय ब्यौरेवार विषय सूचीमें है। हमने पाठकोंके सुभीतेके लिये इस प्रथम भूमिकाके साथ श्लोक सूची तथा विषय सूची भी लगा दी है। आशा कि उपयोगितामें विशेष अवलम्बन है।

उपलब्ध ग्रंथोंमें स्वामीजीका यह ग्रंथ कुछ विशेषही महत्व तथा चमत्कृतिको लिये हुए है इसका मुख्य कारण यह है कि तत्वार्थ सूत्र सरीखे महत्वपूर्ण ग्रंथकी टीका जो गंधहस्ति नामकी ८४००० अनुष्टुप श्लोकप्रमाणमें रची गई है वह बहुतही महत्वपूर्ण होगी और उसीका यह मंगलाचरण है। महत्व शाली ग्रंथका मंगलाचरणभी स्वामी सरीखे ग्रंथकर्ताओंद्वारा महत्वमें कुछ विशेषता लिये अवश्य ही होता है। क्योंकि लोकमें भी कहावत है कि क्षीरसमुद्रका अमृतो त्पत्तिरूप सार चतुर देवों हो द्वारा प्रदर्शित की गई। यद्यपि भाग्यकी न्यूनतासे ग्रंथराज श्रीगंधहस्तिमहाभाष्य इस समय हम लोगोंके दर्शनमें नहीं आताहै तथापि परंपरा श्रुतिसे तथा अनेक अबाध्य प्रमाणोंसे यह सिद्ध है कि स्वामीजीने गंधहस्ति महाभाष्यकी रचना की और यह ग्रंथ गंधहस्तिमहाभाष्यका मंगलाचरण है इस विषयमें श्री विद्यानन्दी महाराज अपनी अष्टसहस्रीके मंगलाचरणमें इस प्रकार लिखते हैं।

शास्त्रावतार रचितस्तुतिगोचराप्त—
५ मीमांसितं कृतिरलंक्रियते मयास्य ॥

इस अद्ध पद्यसे स्पष्ट सिद्ध है कि किसी शास्त्रकी उत्पत्तिमें आदिमें यह ग्रंथ स्तुति स्वरूप मंगलाचरण है। अब किस ग्रंथका यह मंगलाचरण है इस विषयका प्रमाण श्री धर्म भूषणजी यति महाराजका न्यायदीपिकामें स्पष्टरूपसे भलीभांति मिलता है—

'तदुक्तं स्वामिभिर्महाभाष्यस्यादावाप्तमीमांसा प्रस्तावे सूक्ष्मांतरे इत्यादि वह महाभाष्य कौन है तथा किस ग्रंथका वह महाभाष्य है इस विषयमें उभय भाषाकवि चक्रवर्ति श्री हस्तिमल्लिजीका विक्रान्त कौरवीय नाटककी प्रशस्ति इस प्रकार सूचित करती है

तत्वार्थसूत्र व्याख्यानगन्धहस्तिप्रवर्तक
स्वामी समन्तभद्रोभूद्देवागमनिदेशक ॥

सौ वर्ष पहलेके विद्वान् जयचंद्रजी साहबने भी इसी ग्रंथकी आदिमें सवैया–छंदद्वारा यही सूचित किया है। इन सब प्रमाणोंसे स्पष्ट सिद्ध होजाता है कि स्वामीजीने तत्वार्थसूत्रके ऊपर जो टीका गंधहस्ति नामकी रची है उसका यह ग्रंथ मंगलाचरण है। इस ग्रंथका असली महत्व तो अकलंक विद्यानंदी वसुनंदी आदि आचार्योंने समझा है। हम जो कुछ समझ सकते हैं तथा समझे हैं वह पूज्य इन आचार्योंके अष्टशती अष्टसहस्री आदि टीका ग्रंथोंका ही प्रताप है। और इस विषयमें पं० जयचंद्रजी छावड़ा भी देशभाषा जानकारोंके लिये विशेष उपकर्ता हैं।

विनीत—
रामप्रसाद जैन,
बम्बई।

श्लोकसूची ।





नम सिद्धेभ्य ।

श्रीसमन्तभद्राचार्य विरचित

आप्त-मीमांसा ।

देवागमापरनाम ।

पं० जयचंदजी विरचित हिन्दीटीकासहित ।



अथ देवागमनाम स्तवकी देशभाषामयवचनिका लिखिये हैं ।

दोहा ।

वृषभ आदि चउवीस जिन, वंदौं शीस नवाय ।
विघनहरन मंगलकरन, मन वांछित फलदाय ॥ १ ॥
सकलतत्वपरकास कर, स्याद्वादमयसार ।
शब्द ब्रह्म साचे नमौं, जिनवचन हितकार ॥ २ ॥
वृषभसेनकूं आदि ले, अंतिम गौतमस्वामि ।
चउदहसै त्रेपन नमौं, गणधर मुनिवर नामि ॥ ३ ॥

पचमकाल सुआदिमें, केवलज्ञानी तीन ।
श्रुतकेवलि हु पच जे, नमो कर्ममल छीन ॥ ४ ॥
तत्त्वारथशासन कियो, उमास्वामि मुनि ईश ।
सदा तासके चरन युग, नमो धारि कर शीस ॥ ५ ॥

सवैया ३१ सा ।

स्वामि जो समंतभद्र तत्त्वारथशासनको महाभाष्य रची ताकी आदिमें विचारके । परम आप्त मीमांसा देवागमनाम स्तुति स्याद वादसाधनमें भाषी विस्तारके । अष्टशती वृत्ति ताकी कीनी अकलकदेव ताकू विद्यानदसूरि भले मन धारिके । अलकाररूप करी हजार आठ ऐसे तीन मुनिराय पाय नमो मद आरिके ॥ ६ ॥

दोहा ।

आगमकी उत्पत्तिको, कारन आप्तविचार ।
वादीत हैं ज्ञानधर, नमनें योग्यनिहार ॥ ७ ॥
कियो नमन अब करतहु, देवागम श्रुति देखि ।
देशवचनिका तासकी, टीका आशय पेखि ॥ ८ ॥

ऐसैं मगलके अर्थि इष्टकू नमस्कार किया । अब शास्त्रकी उत्पत्ति तथा शास्त्रका ज्ञान आप्ततैं ही होय यातैं शास्त्रके मूलकर्ता तौ परमभट्टारक श्रीऋषभदेव आदि वर्द्धमानपर्यंत चउवीस तीर्थंकर चतुर्थकालमें भये । अर तिनकी दिव्यध्वनितैं श्रेय गणधरीनैं द्वादशाग श्रुतरूप रचना करी तिनकी परिपाटी अनुसार इस पंचमकालमें भये तिननें शास्त्रोंकी प्रवृत्ति करी ऐसैं शास्त्रनिकी उत्पत्ति तथा शास्त्रनिके ज्ञानके कारण आप्त ही हैं । ॥ शास्त्रका आदिविर्षे नमस्कार जोग्य हैं । ऐसैं जानि तिनकू नमस्कारकरि देवागमनाम स्तोत्रकी देशभाषामयवचनिका लिखू हू । ताका सबध ऐसा—जो प्रथम तौ उमास्वामिमुनिननैं तत्त्वार्थसूत्र दशाध्यायरूप रच्या ताकी गधहस्तिनामा महाभाष्य श्रीस्वामिसमतभद्रनैं रची, ताकी आदिमें आप्तकी परीक्षारूप

यह देवागमनामा स्तवन किया, सो याका देवागम ऐसा तौ आदि अक्षरके सम्बधतैं नाम है। अर याका मार्थक नाम आप्तमीमांसा है। मीमांसा परीक्षाकू कहिए है। बहुरि इस स्तवनकी अकलंकदेव आचार्यनैं वृत्ति करी ताके श्लोक आठसैं हैं, ताकू अष्टशती ऐसा नाम कहिये हैं। बहुरि तिस अष्टशतीका अर्थ लेय श्रीविद्यानन्दिनाम आचार्यनैं अष्टसहस्रीनामा याकी अलंकाररूप टीका रची है। सो यह प्रकरण न्यायपद्धतिका है। इसका अर्थ व्याकरण न्यायशास्त्रके पढेनिकू भासे है सो ऐसे पढनेवाले तथा इनका गुरुआम्नायकी विरलता हो गई है ताकरि अर्थके समझनेवाले विरले हैं। मेरे कछू इनका बुद्धि सारू बोध भया तब विचार भया जो सम्यग्दर्शनका प्रधानकारण आप्त, आगम, पदार्थका जानना है अर आप्तकी परीक्षा इन ग्रंथनिमैं है। सो आप्तका यथार्थ स्वरूप इन ग्रंथनितैं प्रकट होय तौ बडा उपकार होय, अल्पबुद्धि हू आप्तका स्वरूप यथार्थ समझै तो ताके वचन आगम है, तथा तिस आगममैं पदार्थका स्वरूप वर्णन है ताकू समझैं सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होय ऐसैं विचारि या स्तवनकी देशभाषामय वचनिका संक्षेप अर्थरूप अष्टसहस्री टीकाका आशय लेय कछू लिखू हू सो भव्य जीव वांचियो, पढियो, वांरियो, यातैं आप्तका यथार्थ स्वरूप जानि श्रद्धान दृढ कीजियो। अर अर्थमैं कछू हीनाधिक लिखू तो विशेष बुद्धिवान् मूल श्लोक तथा टीका देखि शुद्धकरि वांचियो, मेरी अल्पबुद्धि जानि हास्य मति करियो। सत्पुरुषनिका स्वभाव गुणग्रहण करनेका होय है। सो दोष देखि क्षमा ही करै ऐसैं मेरी परोक्ष प्रार्थना है। इस देवागम स्तोत्रकी पीठका ऐसैं है—

यामैं परिच्छेद दश हैं। तिनमें आदिका प्रथम परिच्छेदमैं कारिका (श्लोक) तेईस हैं। तिनमैं आदिमैं देवागम इत्यादि तीन श्लोकनिमैं

तौ भगवान् महान् स्तुतियोग्य एसैं हेतुनिर्तैं नाहीं है ऐसैं कह्या है। बहुरि दोषावरण इत्यादि दोय श्लोकनिमैं भगवान् सर्वज्ञ वीतराग हैं ऐसा अनुमान किया है। बहुरि स त्वमेवासि इत्यादि एक श्लोकमैं ऐसैं सर्वज्ञ वीतराग तुम अरहंत ही हो ऐसैं कह्या है। बहुरि त्वन्मता इत्यादि दोय श्लोकमैं अन्य आप्त नाहीं हैं ऐसा कह्या है। ऐसैं आठ श्लोकमैं तौ पीठबंध है। बहुरि आगैं भावाभावपक्षका एकान्तके निषेधका पाच श्लोक है। तामैं भाव १, अभाव २ अर भावाभाव ३, अवक्तव्य ४, भावावक्तव्य ५, अभावावक्तव्य ६, भावाभावावक्तव्य ७, ऐसैं विधि-निषेधके सात भंगकरि दूषण दिखाया है। बहुरि आगैं नव श्लोकनिमैं भावाभावकी सात् पक्षका अनेकात रूप स्थापन है। बहुरि एक श्लोकमैं अगले परि छेदनिमैं इनि पक्षनिके सप्तभंग करनेकी सूचनिका है। ऐसैं प्रथम परिच्छेद समाप्त किया है ॥ १ ॥

आगैं द्वितीय परिच्छेदमैं एकत्वानेकत्व पक्षका तेरा श्लोकनिमैं वर्णन हैं। तहाँ चार श्लोकनिमैं अद्वैत पक्षके एकातका निषेध है। बहुरि चारि श्लोकनिमै पृथक्त्व एकात पक्षका निषेध है। बहुरि एक श्लोकमैं दोउ पक्ष अर अवक्तव्यपक्षका निषेध है। बहुरि चार श्लोक-निमैं इनि पक्षनिके अनेकातकरि स्थापन है। ऐसैं द्वितीय परिच्छद समाप्त किया है ॥ २ ॥

आगैं तृतीय परिच्छेद नित्यानित्य पक्षका है तामैं श्लोक चोईस है। तहा चार श्लोकनिमैं तौ नित्यत्व एकात पक्षका निषेध है। बहुरि चोदह श्लोकनिमैं क्षणिक एकात पक्षका निषेध है। बहुरि एक श्लोकमैं दोऊका पक्ष अर अवक्तव्य पक्षका निषेध है। बहुरि पाच श्लोकनिमैं अनेकातकरि इन पक्षनिका स्थापन है। ऐसैं तृतीय परि-च्छेद समाप्त किया है ॥ ३ ॥

आगैं चतुर्थ परिच्छेद भेदाभेद पक्षका है। तामैं श्लोक बारह हैं। तिनमैं छह श्लोकनिमैं तौ भेद एकान्त पक्षका निषेध है। बहुरि तीन श्लोकनिमैं अभेद पक्षका निषेध है। बहुरि एक श्लोकमैं दोउकी पक्ष अर अवक्तव्य पक्षका निषेध है। बहुरि दोय श्लोकनिमैं अनेकान्तका स्थापन है। ऐसैं चतुर्थ परिच्छेद समाप्त किया है ॥४॥

आगैं अपेक्षा—अनपेक्षाकी पक्षका पचम परिच्छेद है तामैं तीन श्लोकनिमैं एकान्तका निषेध अनेकान्तका स्थापन है। ऐसैं पाचमा परिच्छेद समाप्त किया है॥ ५ ॥

आगैं हेतु आगमकी पक्षका छठा परिच्छेद है तामैं तीन श्लोक हैं। तिनमैं एकान्तका निषेध अनेकान्तका स्थापन है। ऐसैं छठा परिच्छेद समाप्त किया है ॥ ६ ॥

आगैं अतरग बहिरग तत्त्वकी पक्षका सातमा परिच्छेद है। तामैं नव श्लोक हैं। तहा च्यारि श्लोकनिमै तौ एकान्तका निषेध है। अर पाच श्लोकनिमैं अनेकान्तका स्थापन है। ऐसैं सातमा परिच्छेद समाप्त किया है ॥ ७ ॥

आगैं दैव पौरुष की पक्षका आठमा परिच्छेद है तामैं श्लोक च्यारमैं एकान्तका निषेध अनेकान्तका स्थापन है। ऐसैं आठमा परिच्छेद समाप्त किया है ॥ ८ ॥

आगैं पुण्य पापके बधकी रीतिका नवमा परिच्छेद है। तामैं श्लोक च्यारमैं एकान्तका निषेध अनेकान्तका स्थापन है। ऐसैं नवमा परिच्छेद समाप्त किया है ॥ ९ ॥

आगैं दशमा परिच्छेदमैं उगणीस श्लोक हैं तिनमैं तीन श्लोकनिमैं तौ अज्ञानतैं बध अर अल्पज्ञानतैं मोक्ष ऐसा एकान्तका निषेध करि अर बध मोक्ष जैसैं होय तैसैं अनेकान्ततैं स्थापन किया है।

बहुरि दोय श्लोकनिमैं समाधकी उत्पत्तिका क्रम कह्या है। बहुरि पीछैं दोय श्लोकनिमैं प्रमाणका स्वरूप, संख्या, विषय, फल इन च्यारनिका वर्णन करि अर दोय श्लोकनिमैं स्यात्पदका स्वरूप कह्या है। पीछैं एक श्लोकमैं स्याद्वादकूं अर केवलज्ञानकूं कथंचित् समान दिखाया। पीछै नयका हेतुरूप स्वरूप एक श्लोकमैं कहि अर प्रमाणका विषय वस्तुका स्वरूप एक श्लोकमैं कह्या, पीछैं एक श्लोकमैं याहीकूं दृढ किया, पीछैं प्रमाणनयके वाक्यका स्वरूप चारि श्लोकमैं कह्या। पीछैं एक श्लोकमैं स्याद्वादकी स्थिति कही। अर पीछैं एक श्लोकमैं ग्रंथ करनेका प्रयोजन कहि उगणीस श्लोकरूप परिच्छेद समाप्त किया है। सर्व श्लोक एक सौ चौदह भये ऐसैं दश परिच्छेद रूप पीठका है॥ १० ॥

इति पीठिका।

अथ अष्टसहस्रीनाम टीकाका कर्त्ता श्रीविद्यानन्दिनामा आचार्य कहै है—जो यह देवागमनामा शास्त्र है सो कैसा है? शास्त्रका प्रारम्भ कालविषै रची जो स्तुति ताका गोचर जो आप्त ताकै गुणनिका अतिशयकी परीक्षा स्वरूप है। सो ऐसै मोक्षशास्त्र जो तत्त्वार्थसूत्र ताकी आदिविषैं शास्त्रकी उत्पत्ति तथा शास्त्रका ज्ञानका कारणपणाकरि तथा मंगलकैं अर्थि मुनिननैं भगवान आप्तका स्तवन ऐसैं किया—

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये॥ १ ॥

याका अर्थ—मोक्षमार्गके प्राप्त करनेवाले कर्मरूपपर्वतके भेदनेवाले समस्त तत्त्वके जाननेवाले ऐसे आप्तको मैं तिनके गुणनिकी प्राप्तिकै अर्थि वंदौं हूं। ऐसे अतिशयरहित गुणनिकरि स्तवन कियां ... । आप्त मानूं समन्तभद्राचार्यनूं साक्षात् पूछया जो है सर्व

तभद्र ! यह मुनिननैं हमारा स्तवन निरतिशय गुणनिकरि किया सो हमारे देवनिका आगम आदि विभूति पाइये है, ऐसे अतिशयनिकरि हम महान हैं-स्तवन करने जोग्य है। ऐसे अतिशयसहित गुणनिकरि हमारा स्तवन क्यों न किया। ऐसे पूछैं तैं समतभद्राचार्य भगवानकूं कहै है— कैसे हैं समतभद्राचार्य? मोक्षका मार्गस्वरूप जो अपना हित ताकूं चाहते जे भव्यजीव तिनकै सम्यक् अर मिथ्या जो उपदेशका विशेष ताका ज्ञानके अर्थि आप्तकी परीक्षाकूं करते हैं। बहुरि कैसे हैं? श्रद्धा अर गुणज्ञता इन दोऊनतैं प्रयुक्त है मन जाका ऐसे हैं। ऐसैं उत्प्रेक्षा अलंकाररूप वचन है। ऐसे भगवान आप्तके साक्षात् पूछैं मानूं समत-भद्राचार्य्य कहैं हैं—

देवागमनभोयानचामरादिविभूतय. ।
मायाविष्वपि दृश्यते नातस्त्वमसि नो महान् ॥ १ ॥

अर्थ—हे भगवन्! तुमारे देवनिका आगमन आदि तथा आकाशविषैं गमन आदि तथा चामरछत्रादि विभूति पाइये हैं इस हेतुतैं तो हमारे मुनिनकै तुम महान् स्तुति करनें योग्य नाहीं हो, जातैं यह विभूति तो मायावी जे मस्करी आदिक इन्द्रजालवाले तिनविषैं भी पाइये है। यातैं जो आज्ञा प्रधानी हैं ते देवनिका आगम आदि विभूति अपना परमेष्ठी परमात्माका चिह्न मानूं अर हम सारखे परीक्षा प्रधानी तौ ऐसे चिह्नतैं परमेष्ठी स्तुति करनें योग्य नाहीं मानैं हैं। जातैं यह स्तव आगमके आश्रय है। बहुरि या स्तवनका हेतु देवनिका आगमादि विभूतिसहितपणा है सो यह हेतु भी आगम आश्रित है। प्रतिवादीकै तौ प्रमाणसिद्ध ही नाहीं है, पैला साक्षात् देवागमादि देख्या विना कैसैं मानैं। अर आगमप्रमाणवादीकै भी मायावी आदि विपक्षमैं वर्तनैंतैं व्यभिचारी है। साध्यकूं कैसे साधै। बहुरि आगम

प्रमाणवादी कहै—जो सांचा देवनिका आगमआदि विभूतिसहितपणां भगवानकै है ते मायावीनिविषै नाहीं तातैं हेतु व्यभिचारी नाहीं, तौ तहां भी ऐसा उत्तर जो सांचे विभूति भगवानकै प्रत्यक्ष अनुमान तैं सिद्ध भये नाहीं अर आगमतै सिद्ध किये मानै तो आगमाश्रित ही भया तातैं इस हेतुतैं स्तुति करनें योग्य भगवान आप्त सिद्ध होय नाहीं ॥ १ ॥

आगैं फेरि मानू भगवान पूछै है—जो अंतरंग अर बाह्य शरीरादि महोदय हमारे हैं तैसा अन्यकै नाहीं, सांचा है यातैं हम महान स्तुति करनें योग्य हैं तातैं तैसें स्तवन क्यों न किया, ऐसैं पूछैं मानू फेरि आचार्य कहै हैं—

अध्यात्मं बहिरप्येष विग्रहादिमहोदयः ।
दिव्यः सत्यो दिवौकस्स्वप्यस्ति रागादिमत्सु सः ॥ २ ॥

अर्थ—अध्यात्म कहिए आत्माश्रित शरीराश्रित अंतरंग शरीर आदिका महान् उदय मल पसेव रहितपणा आदिक, बहुरि बाह्य देवनिकरि किया गंधोदकवृष्टि आदिक ये सांच मायावीनिविषै नाहीं पाइये, बहुरि दिव्य है चक्रवर्त्यादिक मनुष्यनिके ऐसे न पाइये। सो ऐसे हेतुतैं भी भगवान आप्त तुम हमारे स्तुति करनें योग्य नाहीं हो जातैं यह अंतरंग बहिरंग सांचा महोदय यद्यपि पूरणादिक इन्द्रजालीनिविषै न पाइये है तोऊ कषाय रागादिकसहित स्वर्गके ... है तातैं हेतु व्यभिचारी है। इस हेतुतैं भी ... नाहीं स्तुतिगोचर कीजिए हैं। इहाँ भी ... र्मके नाशतैं जैसा विग्रहादिमहोदय ... निविषै नाहीं है ? तहां भी पूर्वोक्त ही ... ना... ऐसैं साक्षात् दीखै ...

आगमाश्रित ही है । इहां कहै—जो प्रमाणसंप्लवके माननेंवाले अनेक प्रमाणतैं सिद्ध मानैं हैं । इहाँ आगम प्रमाणतैं सिद्ध भया सोई आगमाश्रित हेतुजनित अनुमानतैं सिद्ध भया यामैं दोष कहा? ताकूं कहिए—ऐसैं प्रमाणसंप्लव इष्ट नाहीं है, प्रयोजन विशेष होय तहाँ प्रमाणसंप्लव इष्ट है । पहलैं प्रमाण सिद्ध प्रामाण्य आगमतैं सिद्ध भया तौऊ ताका हेतुकूं प्रत्यक्ष देखि अनुमानतैं सिद्ध करै पीछैं ताकूं प्रत्यक्ष जाणै तहाँ प्रयोजन विशेष होय है ऐसैं प्रमाणसंप्लव होय है । केवल आगमहीतैं तथा आगमाश्रित हेतुजनित अनुमानतैं प्रमाण कहि काहेकूं प्रमाणसंप्लव कहना ऐसे इस विग्रहादिक महोदयतैं भी भगवान परमात्मा नाहीं मानैं हैं ॥ २ ॥

आगैं फेरि मानूं भगवान् पूछै है जो हमारा तीर्थंकृत सम्प्रदाय है—मोक्ष मार्गरूप धर्मतीर्थ हम चलावैं हैं इस हेतुतैं हम महान् स्तुति करनें योग्य हैं । ऐसैं पूछैं फेरि आचार्य्य साक्षात् ही कहै है ।—

तीर्थकृत्समयानां च परस्परविरोधतः ।
सर्वेषामाप्तता नास्ति कश्चिदेव भवेद्गुरुः ॥ ३ ॥

अर्थ—हे भगवन्! तीर्थ कहिये जाकरि तरिये ऐसा धर्ममार्ग ताकूं करै ते तीर्थकृत् तिनके समय कहिये मत तथा आगम तिनके परस्पर विरोध है तातैं सर्वहीकै आप्तपणा होइ नाहीं । तिनमैं कोई एक गुरु महान् स्तुति करनें योग्य होइ ।

भावार्थ—हे भगवन् आप्त! तुमारे तीर्थकरपणा हेतुतैं महान्पणा साधिये तौ यह तीर्थकरपणा प्रत्यक्ष अनुमान प्रमाणतैं तौ सिद्ध होइ नाहीं । प्रत्यक्ष दीखै नाहीं तथा ताका लिंग दीखै नाहीं । अर आगमतै साधिये तो पूर्ववत् आगम आश्रय ठहरै । बहुरि यहु हेतु व्यभिचारी है तातैं इन्द्रादिकविषै असमर्थ है तौऊ बौद्धादि अन्यमती

है न सर्व अपनें अपनेंकू तीर्थंकर मानै हैं यातें सर्व ही महान् ठहरै हैं। बहुरि ते सर्वज्ञ है नाहीं जातें परस्परविरुद्ध आगम कहै हैं। जो विरुद्ध न कहै तो तिनकै मतभेद काहेकू होइ। तातें तीर्थंकरपणा हेतु है सो काहूहीके महानपणांकूं साधै नाहीं है।

इहां मीमांसकमती कहै है—जो याहीतें ऐसा आया जो पुरुष तौ कोई भी सर्वज्ञ महान् स्तुति करने योग्य नाहीं जे कल्याणके अर्थि हैं तिनकै वेद ही कल्याणका उपदेशका मानना है? ताकूं भी ऐसैं ही कहना—जो वेद आप ही तौ आपके अर्थकूं कहै नाहीं। वेदका अर्थ पुरुष ही करै है। तिनकै भी परस्पर विरोध ही देखिये हैं। तहां भट्टक सम्प्रदायी तौ वेदका वाक्यार्थ भावनाकूं मानै है, प्रभाकरक सम्प्रदायी नियोगकूं वाक्यार्थ मानै हैं, वेदान्तक सम्प्रदायी विधिकूं वाक्यार्थ मानै हैं। तिनकै परस्पर विरोध है। इनका स्वरूप विशेषकरि अष्टसहस्रीमें वर्णन है तथा विस्तारसूं दिखाया है तहांतें जानना।

बहुरि इहां नास्तिकवादी चार्वाक तथा शून्यवादी कहै है—जो काहू वस्तु ही सत्यार्थ नाहीं तब काहेका आप्त अर काहेकू परीक्षाका विवादका प्रयास करिये? ताकूं कहिये—जो वस्तु नाहीं है ऐसा भी निश्चय कैसैं करिये, तू नास्तिक तथा शून्यका कहनेवाला किछू वस्तु ही नाहीं तौ तेरी कही कौन मानैगा अर तू वस्तु है तौ तैसैं ही सर्व वस्तु है। (तथा सर्व वस्तुका जाननेवाला सर्वज्ञ आप्त है।) तहां वस्तुका स्वरूप कोऊ कैसैं मानै है कोऊ कैसैं मानै हैं। तहां परीक्षा ही करी चाहिए। बहुरि परीक्षा होइ है सो प्रमाणरूप ज्ञानतैं होइ है। बहुरि प्रमाणरूप ज्ञान है सो सर्वथा साचा ज्ञान सर्वज्ञका है सो सर्वज्ञ अदृष्ट है निश्चय किया चाहिए। अर अल्पज्ञकै निश्चय होइ, सो अपनें न होय सो साधक प्रमाण अर बाधकका जैसैं निश्चय

होइ, वादी प्रतिवादी निर्वाध निश्चय करै कोइ प्रकार बाधा नाही आवै तैसैं निश्चय करना सो परीक्षा है।

बहुरि इहां मीमांसक कहै—जो अल्पज्ञकी तो सिद्धि होइ है अर सर्वज्ञकी सिद्धि नाही। ताकूं कहिए—जो अल्पज्ञ आत्माकी सिद्धि है तौ ताके निषेधकूं इस श्लोकके चौथे पदका अर्थ ऐसैं करना जो "कश्चिदेव भवेद्गुरु" कहिए कौन गुरु है? यह चित् है—ज्ञान रूप आत्मा है सोई गुरु है—महान् है। जातैं इस चैतन्य आत्माके अन्य पुद्गलके सबन्धतैं ज्ञानावरण आदिक कर्म्म हैं तिनके आवरणतैं अल्पज्ञपणा अर दोषसहितपणा है। सो आवरण दूर भये आत्मा सर्वज्ञ वीतराग होइ है। यह प्रमाणतैं सिद्ध है। ऐसैं आप्त सर्वज्ञका निश्चय भये तिसकै वचनरूप आगमका निश्चय होइ, आगमतैं सर्व वस्तुका निश्चय होइ। ऐसैं निश्चय करते देवागमादि विभूतिसहितपणातैं अर विग्रहादिमहोदयपणातैं अर तीर्थंकरपणातैं तो आप्त सर्वज्ञ सिद्ध न भया तातैं भले प्रकार निश्चय भया है असंभवता बाधकप्रमाण जामैं ऐसा भगवान अरहंत तुम ही संसारी जीवनिका प्रभू हो स्वामी हो यातैं आत्यन्तिक दोषनिका अर आवरणकी हानिकरि अर समस्त तत्त्वार्थनिका ज्ञातापणाकरि सूत्रकारादि मुनिननैं तुमारा स्तवन किया है॥ ३॥

ऐसैं आचार्य समंतभद्रनैं निरूपण किया तब फेरि मानूं भगवान साक्षात् पूछया जो अत्यंत दोष अर आवरणकी हानि सो निषै कौन हेतुतैं निश्चय करी? ऐसैं पूछै मानूं फेरि आचार्य समंतभद्र कहैं हैं—

दोषावरणयोर्हानिर्निःशेषास्त्यतिशायनात्।
क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो बहिरन्तर्मलक्षयः॥ ४॥

अर्थ—दोष अर आवरण की हानि सामान्य तो प्रसिद्ध है। जातैं एकदेश हानितैं अल्पज्ञनिकै एकदेश निर्दोषपणा अर एकदेश

ज्ञानादिक तिस हानिके कार्य देखिये हैं यातैं निर्दोप आवरणकी हानि सपूर्ण काहूविषैं दखिये है—साधिये हैं। इहा अतिशायन ऐसा हेतु है याका अर्थ यहू जो यहू हानि वधता वधती देखिये हैं। जैसें क्वचित् कहिए कहू कनक पापाणादिविषैं कीट कालिमा आदि बाह्य अभ्यन्तर मलका अपणा हेतु जो ताव देतैं सर्वथा अभाव होय है तैसैं अल्पनके तिनका नाशके हेतु जे सम्यग्दर्शनादिक तिनतैं सर्वथा दोप अर आवरणका अभाव होइ है ऐसा सिद्ध होइ है। इहा आवरण तो ज्ञानावरणादिक कर्म्मपुद्गलके परिणाम हैं अर दोप अज्ञानरागादिक जीवके परिणाम हैं। बहुरि इहा कोइ कहै—जैसैं अतिशायन हेतुतैं दोप आवरणकी हानि संपूर्ण साधी। तैसैं कहू बुद्धि आदिगुणकी भी हानि वधती वधती देखिये हैं सो यह भी कहू सपूर्ण सधै है? ताकू कहिए—बुद्धि आदिकी सपूर्ण हानि आत्मा विषै साधिये है तो आत्माके जडपणा आवै सो यह बडा दोप आवै तातैं जीवपुद्गलका स्वरूप वधपर्य्यायमैं क्षयोपशम रूप बुद्धि है ताका अभाव होइ है सो आत्माका स्वाभाविक ज्ञानादिगुण तो सपूर्ण प्रकट होइ है अर वंध पर्य्यायका अभाव होइ पुद्गल कर्मजडरूप भिन्न होय जाय है तैसैं पुद्गलकै बुद्धि आदि गुणका अभावका व्यवहार है। ऐसैं वीतराग सर्वज्ञ पुरुप अनुमानकरि सिद्ध होय है॥ ४॥

आगैं मीमांसकमती कहै हैं—जो जीव है सो भावकर्म अज्ञानादिकतैं रहित भया होय तौऊ सूक्ष्मादि पदार्थ समस्तकू ता नाहीं जानै। अथवा अन्य पदार्थनिकू सर्वकू जानैं तौ जानू परन्तु धर्म अधर्मकू सो नाहीं जानैं ऐसैं मानूं भगवान फेर पूछया तब मानू फेर समन्तभद्राचार्य्य सूत्रकारादिक स्तवन करनेवाले मुनिनकै बुद्धिका अतिशय जनावनेकी इच्छाकरि भगवानकू कहैं हैं—

सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः प्रत्यक्षाः कस्यचिद्यथा।
अनुमेयत्वतोऽग्न्यादिरिति सर्वज्ञसंस्थितिः॥ ५॥

अर्थ—सूक्ष्म कहिये स्वभावकरि क्षीण परमाणु आदिक बहुरि अंतरित कहिये कालकरि जिनका अंतर पड्या ऐसे रामरावणादिक बहुरि दूरस्थ कहिये क्षेत्रकरि दूरवर्ती मेरू हिमवत् आदिक ये पदार्थ हैं ते कोईकै प्रत्यक्ष दृष्ट हैं जातैं यह अनुमेय हैं, अनुमान प्रमाणके विषैं यह जैसें अग्नि आदिक पदार्थ अनुमानका विषय है सो कोई काहू प्रत्यक्ष भी देखै है तैसें यह सूक्ष्म आदिक भी हैं। ऐसें सर्वज्ञका भलै प्रकार निश्चय होय है। इहां कोई कहै—जे पदार्थ अनुमानके विषय हैं ते तौ काईकै प्रत्यक्ष हैं अर जे अनुमान गोचर ही नाहीं ते कैसे प्रत्यक्ष होय? ताकू कहिये—जो धर्मादिक पदार्थनिकू अनुमानका विषय न मानिये तौ सर्व ही अनुमानका उच्छेद होइ है। अर इहां धर्म अधर्म पदार्थ विवादमें आये हैं तिनहीकू साधिये हैं। अन्य पदार्थ विवादमें न आये तिनकी चरचा नाहीं अर धर्मादिक पदार्थ हैं ते अनुमानके विषय हैं ही। जातैं ते अनित्यस्वभावरूप हैं। काहूकै सुख होय जहां जानिये याकै पुण्यका उदय है। काहूकै दुःख होइ तहां जानिये याकै पापका उदय है। ऐसैं अनुमानके विषय धर्मादिक पदार्थ हैं। तातैं कोईकै प्रत्यक्ष हैं ऐसें सर्वज्ञका अनुमानकरि फेर स्थापन किया॥ ५॥

आगैं फेर मानू भगवान पूछ्या—जो ऐसें सामान्यपणैं तौ सर्वज्ञ सिद्ध भया परंतु ऐसा परमात्मा अरहंत ही है ऐसा निश्चय कैसैं किया जातैं तुमारे हम ही महान् वंदनीक ठहरैं, ऐसें पूछैं मानू फेर आचार्य जैसें अरहंत ही सर्वज्ञ ठहरैं ऐसा वाक्य कहैं हैं—

स त्वमेवासि निर्दोषो युक्तिशास्त्राविरोधिवाक् ।
अविरोधो यदिष्टं ते प्रसिद्धेन न बाध्यते ॥ ६ ॥

अर्थ—हे भगवन्! सो कहिए सो पूर्वोक्त निर्दोष कहिए आवरण अर अज्ञानरागादिक तिनतैं रहित ऐसा सर्वज्ञ वीतराग तुम ही हो, जातैं कैसे हो तुम? युक्ति अर शास्त्र इन दोऊनतैं विरोध रहित अविरोधि हैं वचन जिनके ऐसे हो। जैसैं कोइ श्रेष्ठ वैद्य होइ तैसैं। इहां भगवान मानू फेर पूछया—जो हे समन्तभद्र! हमारे वचन युक्ति—शास्त्रतैं अविरोधी कैसैं निश्चय किये? तहा आचार्य फेरि कहैं हैं—हे भगवन्! जो तुमारा कह्या इष्ट तत्त्व मोक्ष अर मोक्षका कारण, संसार अर संसारका कारण यह है सो प्रसिद्ध जो प्रमाण ताकरि नाही बाधिये हैं। जो प्रमाणकरि नाहीं बाध्या जाय सोइ युक्तिशास्त्राविरोधी। इहा वैद्यका दृष्टान्त श्लोकमैं नाही है तोऊ आचार्य स्वयंभूस्तोत्रमैं आप कह्या है तातैं अष्टसहस्री टीकामैं कह्या है। वैद्यभी रोग अर रोगकी निवृत्ती अर तिनके कारणनिविषै निर्बाध प्रवर्त्तै है, ऐसैं वैद्यका दृष्टान्त है। तहाँ मोक्षादितत्त्व निर्बाध कैसे हैं सो दिखावैं हैं—प्रथम तो भगवान अरहंतका भाष्या मोक्षतत्व है सो प्रमाणकरि बाध्या न जाय है। इंद्रियजनित प्रत्यक्ष प्रमाणका तौ मोक्ष विषय ही नाहीं बाधक कैसे होय, बाधक साधक होय, सो अपने विषयहीका होय। बहुरि अनुमान अर आगमकरि मोक्षका अस्तित्वका स्थापन है ही, बहु दोष आवरणका अत्यन्त अभाव भये अनन्त ज्ञानादिकका लाभ सो मोक्ष अनुमान आगमतै प्रसिद्ध है। तैसैं ही मोक्षका कारणतत्त्व सम्यग्दर्शन-ज्ञान चरित्र है ते भी प्रमाणकरि सिद्ध हैं। जातैं कारण विना कार्यका न होना प्रसिद्ध है। बहुरि संसारतत्त्व है सो भी प्रमाणकरि बाध्या न जाय है। अपने उपजाये कर्मकै वशतैं आत्माकै एक भवतैं

अन्यभवकी प्राप्ति सो संसार है सो प्रत्यक्ष है अनुमानका तौ विषय ही नाहीं तिनकी बाधा कैसें आवै। बहुरि तिनका विषय होइ तौ ते साधक ही होय, बाधक न होइ। बहुरि संसारका कारणतत्व भी प्रमाणबाधित नाहीं है जातैं कारण विना कार्य होय नाही। मिथ्यात्वादि संसारके कारण प्रसिद्ध हैं। ऐसैं मोक्ष मोक्षका कारण अर संसार संसारका कारण तत्व प्रमाणकरि बाधे न जाँय तातैं भगवान अरहंतके वचन युक्तिशास्त्रतैं बाधे न जाय। सो ऐसे निर्बाध वचन भगवानकै निर्दोषपणाकूं साधै ही है। इहाँ कोई कहै—सर्वज्ञ वीतरागकै इच्छा विना उपदेशरूप वचनकी प्रवृत्ति कैसैं सम्भवै? ताकूं कहिए है—वचन प्रवृत्तिकूं कारण नियमकरि इच्छा ही नाही है। विना इच्छा भी वचन प्रवृत्ति होइ है, जैसैं सूता आदिककै इच्छा विना वचन प्रवृत्ति होइ है तैसैं जानना, यातैं सर्वज्ञ वीतराग भगवान् स्तुति करनें योग्य है यातैं हे भगवन्! ऐसे तुम ही मोक्ष मार्गके प्राप्त करनेंवाले हो अन्य कपिल कहिये सांख्यमती आदिक ऐसे नाहीं है॥ ६॥

सोई दिखाइये हैं—

त्वन्मतामृतबाह्यानां सर्वथैकान्तवादिनाम्।
आप्ताभिमानदग्धानां स्वेष्टं दृष्टेन बाध्यते॥ ७॥

अर्थ—हे भगवन्! तुम्हारा मत अनेकान्त स्वरूप वस्तु है। तथा ताका ज्ञान है सो यहु अमृत जो मोक्ष ताका कारण हैं तातैं यहू मतभी अमृत है, सर्वथा निर्बाध है, तातैं भव्यजीवनिकै परितोषका उपजावनेंवाला है यातैं बाह्य सर्वथा एकान्त है। तिसके अभिप्रायवाले तथा कहनेंवाले सांख्य आदि मतके प्ररूपक कपिल आदिक हैं ते आप्तपणाके अभिमान करि दग्ध हैं; जातै ऐसैं मानैं हैं जो हम आप्त हैं अर बाधासहित सर्वथा एकान्तके कहनेंवाले हैं तातैं झूठा

आगैं अभावैकान्त पक्षविर्षै दूषण दिखावै हैं।

अभावैकान्तपक्षेऽपि भावापन्हववादिनाम्।
बोधवाक्यं प्रमाणं न केन साधनदूषणम्॥ १२॥

अर्थ—अभाव कहिये किछू भावरूप वस्तू नाहीं ऐसा अभाव एकान्त पक्ष है ताकै होतैं भावका लोप भया सो इस भावके लोप कहने वाले वादीनिकै बोध कहिये ज्ञान जिसतैं अपणा अर्थ—तत्वका साधन दूषण करिये अर वाक्य कहिये परका अर्थतत्वका साधनदूषणरूप वचन इनका अभाव आया तब प्रमाणकी व्यवस्था न ठहरी तब अपणा अभावैकान्त पक्ष काहेकू थापै अर परका भावपक्ष काहेतैं दूषै? बहुरि जो स्वपक्षका साधन दूषण मानिये तो भावपक्षकी सिद्ध होइ है। ऐसा दूषण आवै है तातैं अभावैकान्तपक्ष कल्याणकारी नाहीं है॥१२॥

आगैं कहैं हैं—जो परस्पर अपेक्षारहित भावाभाव पक्ष अवक्तव्य पक्ष भी कल्याणकारी नाही है ऐसैं स्वामी समन्तभद्राचार्य्य कहैं हैं—

विरोधान्नोभयैकान्त्यं स्याद्वादन्यायविद्विषां।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते॥ १३॥

अर्थ—उभय कहिये भाव अर अभाव ये दोऊ एकात्म्य कहिये एकस्वरूप सो नाही है तातैं स्याद्वादन्यायके विद्विषा कहिये शत्रु विरोधी तिनकै भाव अभाव दोऊ एक स्वरूप कहनेंमैं परस्परपरिहारस्थितिलक्षण विरोध आवै है। बहुरि अवाच्य कहिये कहनेंमैं न आवै ऐसा अवक्तव्य एकान्त मानिये तौ वस्तु अवक्तव्य है, ऐसो कहनौं युक्ति न होइ है। तहा ऐसा जानना जो भाव पक्षमैं अर अभाव पक्षमैं न्यारे न्यारे मानें दोष आवै ताके दूर करनेकी इच्छाकरि दोऊकू एकस्वरूप माननेंवालेकै विधि निषेधके परस्परपरिहारस्थितिस्वरूपपणा

प्रयोजन है। बहुरि काई प्रकार कहनेंतें सर्वथाका निषेध भया सोहू फेर सर्वथा नाही ऐसा नियमके अर्थि वचन है। ऐसैं प्रश्नके वशतैं एक वस्तुविषैं अविरोधकरि विधिप्रतिषेधकी कल्पनातैं सप्तभंगकी प्रवृत्ति होइ है। ऐसैं नयवाक्यमात्र ही है। विधिनिषेधके भंग सात ही हैं। इनतैं अन्य नांहीं होइ हैं। जो संयोग भंग कीजिये तौ इनहीमैं अंतर्भूत होइ हैं तथा कोई पुनरुक्त होइ हैं। बहुरि यह सातप्रकार वस्तु धर्म है—असत् कल्पना नाहीं है। इनहीतैं वस्तुका यथार्थ ज्ञान अर वस्तुकै अर्थक्रियारूप प्रवृत्तिका निश्चय होइ है। इनमैं सत् असत् अवक्तव्य ये तीन भंग तौ एक एक ही हैं बहुरि सत् असत् क्रमकरि कहना, अर सदवक्तव्य, असदवक्तव्य ये तीन द्विसयोगी हैं, बहुरि सत्-असत् अवक्तव्य यह एक त्रिसयोगी है। सत, असत, सत् असत्—क्रमकरि कहना ये तीन तो वक्तव्य भये अर एक अवक्तव्य का ऐसैं चार तो ये अर वक्तव्य अवक्तव्य का सयोग भंग करनेंतैं तीन फेर भये ऐसैं सात भंग भये हैं। इहां सत् आदि शब्द हैं ते तौ अनेकान्तके वाचक हैं अर कथंचित् शब्द है सो अनेकान्तका द्योतक है बहुरि याकै आगैं एवकार शब्द है सो अवधारण कहिये नियमकै अर्थि होइ है। बहुरि यह कथंचित् शब्द है सो याका पर्य्यायशब्द स्यात् ऐसा है। सो सर्व वचननि परि लगाइये हैं ऐसो जहां याका प्रयोग नाहीं होइ तहां भी जे स्याद्वाद न्यायमैं प्रवीण हैं ते सामर्थ्यसू जाणि ले हैं। स्यात् शब्द बिना सर्वथा रूप ही वस्तु है इत्यादि कहनेमैं अनेक दोष आवै है तिनकी चरचा टीकातै जाननीं ॥ १४ ॥

आगैं पहली कारिकामैं नययोग कह्या सो अब पहले दूसरे भंगविषैं नययोग दिखावै हैं—

इष्ट अनिष्टकी व्यवस्था विना कहूं ठहरना नाहीं। तातैं यहु भलै प्रकार कह्या हुआ बणै है जो सत्व असत्व एक वस्तुमैं न मानिये तौ स्वपरतत्वकी व्यवस्था न ठहरै तब सर्वथा एकान्ती कहू ठहरै नाहीं ॥ १५॥

आगैं ऐसैं प्रथम द्वितीय भगका स्थापनकरि अब तृतीयादिक भगनिकूं आचार्य निर्देश करै है—

क्रमार्पितद्वयाद्द्वैतं सहावाच्यमशक्तितः।
अवक्तव्योत्तराः शेषास्त्रयो भंगाः स्वहेतुतः ॥ १६ ॥

अर्थ—क्रमार्पित कहिये पहलैं न्यारे न्यारे कहे जे सत् असत् ते दोऊ अनुक्रमतैं कहनैंतैं वस्तु द्वैत है। बहुरि सत् असत् ये दोऊ सह कहिये युगपत् एककाल अवाच्य कहिये कहनेमैं न आवै तातैं युगपत् कहनेकी वचनकै सामर्थ्य नाहीं तातैं अवक्तव्य हैं। बहुरि शेषा कहिये अवशेष जे तीनभग अवक्तव्य है उत्तर पद जिनकै ऐसैं ते अपनैं अपनैं हेतुतैं होंगें। तहां अनुक्रमकरि अर्पण किया जो स्वरूपादि अर पररूपादिकका चतुष्टय द्रव्य क्षेत्र काल भावका द्विक तातैं तौ कोई प्रकार सत्-असत् ऐसा दोऊका एक भग है। याकू द्वैत ऐसा नाम कह्या सो द्वित शब्दपर स्वार्थविर्षै ' अण् ' प्रत्ययकरि द्वैत शब्द निपजाया है। बहुरि अपना अर परका स्वरूपादिक चतुष्टय अपेक्षा एक काल कहनेंकी अशक्तितैं अवक्तव्य है। जातैं जिस प्रकार कहनेंवाळा पद तथा वाक्यका अभाव है। बहुरि वाका तीन भंग पाचमा छटमा सातमा सत् असत् उभय इनकै अवक्तव्य उत्तरपद लगाय अपने हेतुकै वशनैं कहने, ते कैसैं ? कोई प्रकार सत् अवक्तव्य ही है, जातैं स्वरूपादि चतुष्टयकी अपेक्षा तौ सत् ऐसा वक्तव्य है परतु सत् असत् ऐसें दोऊ एक कालवस्तुमैं हैं तातैं एक काल कहे नाहीं जाय हैं तातैं अवक्तव्य भी है, ऐसैं यहु पाचमा भग है। बहुरि ऐसैं ही कोई प्रकार असत् अवक्तव्य भी है,

तातैं पररूपादि चतुष्टयकी अपेक्षा तो असत् ऐसा कह्या जाय है अर सत् असत् ये दोऊ एक काल है परन्तु एककाल कहे जाते नाहीं, तातैं असत् अवक्तव्य है, ऐसैं छट्ठा भंग है। बहुरि कोई प्रकार सदसदवक्तव्य ही है। जातैं सत् असत् ये दोऊ क्रमकरि कहे जाय हैं अर दोऊ एककाल कहे न जाय हैं तातैं सदसदवक्तव्य ऐसा सातमा भंग है। ऐसैं यह वक्तव्यावक्तव्यस्वरूप तीन भंग पूर्वोक्त च्यारि भंगनितैं न्यारे ही हैं। बहुरि तिनमैं सदसद् उभय इन तीनमैंसूं एक न होय तो अवक्तव्य धर्म बणै नाहीं जातैं तिन सानुवक्ष होतैं भी तिनकी विवक्षा न करते केवल एक न्यारा ही अवक्तव्य भंग कहनेमैं विरोध नाहीं है। ऐसैं इन भंगनिकी स्वमत परमत अपेक्षा सभङ्गीकी चरचा अष्टसहस्रीमैं है तहातैं जाननी ॥ १६ ॥

आगैं कहै हैं—जो वस्तुका स्वरूप अस्तित्व ही है, नास्तित्व वस्तुका स्वरूप नाहीं है सो परवस्तुके स्वरूपके आश्रय है, एक ही वस्तुकै आश्रय होनेमैं अतिप्रसंग दूषण आवै है, ऐसी तर्क होतैं आचार्य कहैं हैं—

अस्तित्वं प्रतिषेध्येनाविनाभाव्येकधर्मिणि ।
विशेषणत्वात् साधर्म्यं यथा भेदविवक्षया ॥ १७ ॥

अर्थ—अस्तित्व धर्म है सो एक धर्मी जो जीव आदिक तिनिविषैं प्रतिषेध्य जो [अस्तित्वकै] नास्तित्व ताकरि अविनाभावी है। नास्तित्व विना अस्तित्व नाहीं होइ, दोऊका भिन्न आधार नाहीं। जातैं या अस्तित्व नास्तित्वकै विशेषणपणा है। जो विशेषण होइ सो एक धर्मिविषैं अपना प्रतिषेध धर्मसूं अविनाभावी होइ। जैसैं हेतुका [illegible]
[illegible] सो भेदविवक्षा कहिये वैधर्म्य ताकरि अविनाभावी
[illegible] प्रसिद्ध है। जहां अन्वय होइ [illegible]

जैसैं घटविषै अस्तित्व है जैसैं यह पट नाहीं है ऐसा नास्तित्व भी है। जो इहां नास्तित्व नाहीं होय तौ घट पट भी होइ जाय। ऐसैं अस्तित्व धर्म है सो एक धर्मीविषै नास्तित्वधर्मकरि अविनाभावी जानना॥ १७॥

आगैं फेर पूछै—जो अस्तित्व तौ नास्तित्वकरि अविनाभावी होइ अर नास्तित्व अस्तित्वकरि अविनाभावी कैसे होइ, आकाशके फूलकै तौ अस्तित्वका कोई प्रकार भी संभवै नाहीं वाकै तौ नास्तित्व ही है ऐसैं पूछैं आचार्य कहै हैं—

नास्तित्वं प्रतिषेध्येनाविनाभाव्येकधर्मिणि।
विशेषणत्वाद्वैधर्म्यं यथाऽभेदविवक्षया॥ १८॥

अर्थ—नास्तित्व धर्म है सो अपना प्रतिषेध्य जो अस्तित्व धर्म ताकरि एक धर्मीविषैं अविनाभावी है। जातैं यह विशेषण है जैसैं हेतुके प्रयोगविषैं वैधर्म्य है सो अभेद विवक्षा कहिये साधर्म्यरूप प्रतिषेध्यधर्मकरि अविनाभावी है यह सर्व हेतुवादीनिकै प्रसिद्ध है, जैसैं शब्दकै अनित्यपणा साधनैंविषैं कृतकपणा हेतु आकाशादि विपक्षमैं धर्मरूप है सो घटादिसपक्षतैं समाधान धर्मरूप जो साधर्म्य ताकरि अविनाभावि विशेषण है ऐसा उदाहरण जीवादि एकधर्मीविषैं पररूपादिकरि नास्तित्वकूं स्वरूपादिककरि अस्तित्वकरि अविनाभावी साधै ही है। इहां भावार्थ ऐसा—जो अस्तित्व नास्तित्व दोऊ परस्पर विधिनिषेधस्वरूप हैं, विधि विना निषेध नाहीं निषेध विना विधि नाहीं॥ १८॥

आगैं पूछै है—जो अस्तित्व (नास्तित्व) तौ विशेषण कहिये हैं विशेष्य नाहीं है। तातैं अस्तित्व नास्तित्वके अविनाभावि साधनैंकूं दोय कारिका अनुमानप्रयोगकी कही सो विशेषणरूप धर्म तौ साध्यसाधनकै आधार होइ नाहीं तातै अनुमानका प्रयोग कैसैं बणै, केइ तौ ऐसैं कहै हैं।

बहुरि केई ऐसैं कहैं हैं—जो वस्तुका स्वरूप तौ वचनगोचर नाहीं तातैं कहना बणै नाहीं। बहुरि केइ ऐसैं कहैं हैं—जो जीवादिक वस्तुकै अत्यत भेद ही है जेसें घट पट भिन्न है तातैं अस्तित्व नास्तित्व भिन्न ही हैं—तिन स्वरूप वस्तु नाही ऐसैं कहनेवालेनि प्रति आचार्य कहै हैं—

विधेयप्रतिषेध्यात्मा विशेष्यः शब्दगोचरः।
साध्यधर्मो यथा हेतुरहेतुश्चाप्यपेक्षया ॥ १९ ॥

अर्थ—विशेष्य कहिये विशेषणके योग्य सर्व ही जीवादिक पदार्थ हैं सो, विधेय कहिये विधिके योग्य अस्तित्वधर्म, अर प्रतिषेध्य कहिये निषेध योग्य नास्तित्वधर्म इनि दोऊ धर्मनिस्वरूप है। जातैं विशेषणके योग्य विशेष्य होय सो ऐसा ही होय। बहुरि इस विशेषणपणाकै साधनेकूं विशेषण (विशेष्य) है, सो कैसा है? विशेष्य शब्दगोचर कहिये शब्दका विषय है अर्थात् जो शब्दकरि कहिये ऐसा विशेष्य विधिप्रतिषेधस्वरूप ही होय। अब याका उदाहरण कहैं है—जैसे साध्यका धर्म हेतु है सो अपेक्षाकरि विधिप्रतिषेधस्वरूप ही होय। जहां साध्यकूं साधै तहा तौ हेतु होय अर जहा साध्यकूं नाहीं साधै तहा ही अहेतु होय। जैसे शब्दकूं अनित्य साधिये तब कृतकपणा ताका धर्मकूं हेतु होय सो ताकै अनित्यपणा साधै। बहुरि सो ही कृतकपणा शब्दकूं नित्य साधनेमैं अहेतु होय। तथा जहा अग्निमानपणा साधिये तहा धूमवानपणा हेतु है सो ही ताकै विपक्ष जलके निवासविषैं अहेतु है ऐसैं जानना। ऐसैं विधिप्रतिषेधस्वरूप जीवादिक पदार्थ हैं सो शब्दगोचर हैं ऐसा सिद्ध होय है ॥ १९ ॥

आगैं पूछै हैं—जो च्यार भग तौ स्पष्ट किये बाकी तीन भग कैसैं बणैं, ऐसैं पूछैं आचार्य उत्तर कहैं हैं—

शेषभंगाश्च नेतव्या यथोक्तनययोगतः ।
न च कश्चिद्विरोधोऽस्ति मुनीन्द्र ! तव शासने ॥ २० ॥

अर्थ—शेषभंगा कहिये बाकीके तीन भंग हैं ते पूर्वै जे अस्तित्व नास्तित्वकी दोय कारिकामैं नय कही ताके योगतै प्राप्त करणें, तहा हे मुनीन्द्र ! तुम्हारे शासन कहिये आज्ञा मत तामैं किछू भी विरोध नाहीं है। यहा कारिकामैं शेष वचन है सो उत्तरके तीन भंगनिकी अपेक्षा है जातै पहली दोय कारिकामै अस्तित्व नास्तित्व दोऊ ही अपने अपने प्रतिपक्षीकी अपेक्षा विशेषणपणा हेतुतैं साधे। बहुरि या कारिकातैं पहलैं कारिकामैं विधिप्रतिषेधस्वरूप विशेष्यवाच्य शब्दगोचरतैं साध्या सो यहू तीसरा भंग साध्या सो याकू भी विशेषणपणा हेतुतैं अपना प्रतिपक्षीकी अपेक्षा विधिनिषेधरूप जानना। बहुरि तैसैं सामर्थ्यतैं अवक्तव्य ही अपणा प्रतिपक्षी वक्तव्य धर्म ताकी अपेक्षा विशेषणपणा हेतुतैं विधिनिषेधरूप जानना, ऐसैं च्यार भंग तौ यह अर शेष तीन भंग अस्तित्वावक्तव्य, नास्तित्वावक्तव्य, अस्तित्वनास्तित्वावक्तव्य ऐसैं अपने अपने प्रतिपक्षीकी अपेक्षा विशेषणपणा हेतुतैं विधिप्रतिषेधरूप जाननें, 'विशेषणत्वात्, ऐसा नययोग है सो सर्वके लगावणा जातैं एकधर्मी जीवादिक वस्तुविशेषनिविषैं एक धर्म विशेषण है ऐसैं सर्वज्ञके मतमैं किछू भी विरोध नाहीं है अपने प्रतिपक्षी धर्मतैं अविनाभावी विशेषणकू जे अन्यवादी नाहीं साधै हैं तिनहाके मतमैं विरोध आवै है ॥ २० ॥

आगैं अब आचार्य कहैं हैं—विधिनिषेधकरि अवस्थित नाहीं ऐसा अनेकान्तात्मक वस्तु है सो सप्तभंगी वाणीकी विधिका भागी है सो ही अर्थक्रियाका कहनेवाला है। बहुरि अन्यप्रकार नाहीं है। जो अस्ति ही है तथा नास्तित्व ही है ऐसी कल्पना सर्वथा एकान्तरूप करै है सो असत्

कल्पना है—वस्तुका रूप नाहीं। ऐसैं अपने पक्षका साधन अर परपक्षका दूषणरूप वचनकू समेटता सता—सकोचता सता कहै हैं—

एवं विधिनिषेधाभ्यामनवस्थितमर्थकृत्।
नेति चेन्न यथा कार्यं बहिरन्तरुपाधिभिः॥ २१॥

अर्थ—ऐसें कहिये पूर्वोक्तप्रकार न्यायकरि सप्तभंगीविधिविर्षै विधि निषेधकरि अनवस्थित जीवादिक वस्तु हैं सो अर्थकृत् कहिये अर्थक्रियाकू करैं हैं—कार्यकारी हैं। बहुरि नेति चेत् कहिये अन्यवादी ऐसें नाहीं (मानैं) तौ तिनके बाह्य अंतरंग उपाधि कहिये कारण-निकरि कार्य तिन वादीनिनैं मान्या है तैसैं नाहीं होय है। तहां जीवादि वस्तु सत् ही है अथवा असत् ही है ऐसें सर्वथा न होय किंतु कथंचित् सत् हैं अर कथंचित् असत् हैं ऐसैं होय तातैं अनवस्थित कहिये सो ही वस्तु कार्यकरनेवाला है। बहुरि जो अन्यवादी सर्वथा एकांतकरि सत् ही है अथवा असत् ही है ऐसा अवस्थित कहैं हैं तिनकै तिनमें जैसा कार्यसिद्ध होना बाह्य अंतरंग सहकारी कारण अर उपादानकारणकरि मान्या है तैसा नाहीं सिद्ध होय है। याकी विशेष चरचा अष्टसहस्रीतै जानना॥ २१॥

आगैं तर्क—जो वस्तु अनेक धर्मस्वरूप मान्या तहां अस्तित्व आदि धर्मनिकै धर्मीकरि सहित उपकार्य-उपकारकभाव होतैं सतैं धर्मनिकै उपकार धर्मी करै है कि धर्मीकै उपकार धर्म करै है। तहां भी धर्मी एक शक्तिकरि करै है कि अनेक शक्तिकरि करै है? तहां भी वादी दूषण बतावै तिन सर्वहीका निराकरण करते संतैं आचार्य कहैं हैं—जो एकधर्मीविर्षै अनेक धर्म हैं तातैं कथंचित् सर्व प्रकार संभवै है धर्मधर्मीकै अंग-अंगीभाव है तातैं अनेकांत कहनेमैं विरोध नाहीं है—

वास्तवमैं सभवै नाहीं। जातैं कर्ता क्रिया आदिमैं तौ उपजना विनशना है सो यह मानिये तौ ब्रह्म अनित्य ठहरै अर द्वैतका प्रसग आवै तथा उपजना, विनशना एकहीकैं आपहीतैं अन्य कारण विना होय नाहीं। यदि ये भेद अविद्यातैं मानैं तौ अविद्याकू तौ अवस्तु मानैं है अर अवस्तुकै कार्यकारणविधान सभवै नाहीं। बहुरि अविद्याकूं यदि वस्तु मानैं तो द्वैतपणां आवै इत्यादि प्रत्यक्ष अनुमान प्रमाणतैं विरोध आवै है ताकी चर्चा अष्टसहस्रीतैं जाननी ॥ २४ ॥

आगैं इस अद्वैतपक्षविषैं ही अन्य दूषण दिखावते संते आचार्य कहैं हैं—

कर्मद्वैत फलद्वैत लोकद्वैत च नो भवेत् ।
विद्याविद्याद्वय न स्याद्बन्धमोक्षद्वय तथा ॥ २५ ॥

अर्थ—पूर्वोक्त अद्वैतएकांतपक्षमैं लौकिक अर वैदिक कर्म अथवा शुभ-अशुभकर्मका आचरण अथवा पुण्य-पाप कर्म ऐसा कर्मद्वैत न ठहरै। बहुरि कर्मद्वैतका फल भला-बुरा, सुख-दुखका द्वैत न ठहरै। बहुरि फल भोगनेका आश्रय यह लोक न ठहरै। यदि यहां ऐसा कहै जो कर्म आदिका द्वैत अविद्याके उदयतैं है तो तहां उत्तरमैं कहिये है कि धर्म-अधर्मका द्वैतका अभाव होतैं विद्या-अविद्याका द्वैत सभवै नाहीं। बहुरि विद्या-अविद्या नाहीं तब बंध-मोक्षके द्वैतका अभाव होय। बहुरि यदि विद्या-अविद्या भी कल्पित मानैं तो शून्यवादीकी कल्पना भी मानना ठहरै सो यह युक्त नाहीं। परीक्षाप्रधानी तो परमार्थरूप निरूप फल विचारि प्रवर्तैं हैं। पुण्य-पाप, सुख-दुख, यहलोक-परलोक, विद्या-अविद्या, बंध-मोक्ष ऐसैं विशेषरहित परीक्षावान आदरै नाहीं। शून्यवादकू कौन आदरै? ॥ २५ ॥

आगें अद्वैतवादी कहै कि हम ब्रह्म-अद्वैत मानैं हैं सो प्रमाणतैं सिद्ध भया मानैं हैं। तहां अनुमान प्रमाण तौ ऐसा है जो प्रतिभासमैं नाना वस्तु आवै हैं सो प्रतिभासस्वरूप भयें प्रतिभासमैं प्रवेशरूप ही हैं जैसें प्रतिभासका स्वरूप है, तैसें ही ते नाना हैं, सुख प्रतिभासै हैं, रूप प्रतिभासै है ऐसें है यामैं कछु बाधा नाहीं है। बहुरि आगम जो वेद तातैं भी ऐसा ही सिद्ध होय है जातैं वेद है। वेदमैं ऐसा कहा है—ब्रह्म-शब्दकरि समस्त वस्तु कहिये है। बहुरि वेदके जो उपनिषद वचन हैं तिनमैं ऐसा कहा है—जो यह ग्राम आराम आदिक सर्व हैं ते सर्व ब्रह्म हैं नाना किछू भी नाहीं है, लोक नानाकूं देखै है, तिस ब्रह्मकूं नाहीं देखै है सो लोकके अविद्या है, इत्यादि, ताकै प्रति उत्तरद्वारा निषेध-करनेके इच्छुक आचार्य कहैं हैं—

हेतोरद्वैतसिद्धिश्चेद् द्वैतं स्याद्धेतुसाध्ययोः।
हेतुना चेद्विना सिद्धिर्द्वैतं वाङ्मात्रतो न किम् ॥ २६ ॥

अर्थ—हे अद्वैतवादी! जो तू हेतुतैं अद्वैतकी सिद्धि मानैगा कि "जो सर्व नाना वस्तु दीखै हैं सो प्रतिभासमैं सर्व गर्भित भये, प्रतिभा-सवाली होनेतैं" ऐसें तौ हेतु अर साध्य दोय ठहरै, तब द्वैतपणा आया। बहुरि यदि हेतु विना आगममात्रतैं अद्वैतकी सिद्धि मानैं तौ द्वैतता हू वचनमात्रतैं कैसें न होय। तथा आगम अर अद्वैतब्रह्म ऐसें दोय ठहरै तब द्वैतपना क्यों न आवै॥ २६ ॥

आगें अन्य दूषण दिखावै हैं—

अद्वैतं न विना द्वैतादहेतुरिव हेतुना।
संज्ञिनः प्रतिषेधो न प्रतिषेध्यादृते क्वचित् ॥ २७ ॥

अर्थ—हे अद्वैतवादिन्! अद्वैत है सो द्वैत विना नाहीं हो सकै। अद्वैत शब्द है सो अपना अर्थका प्रतिपक्षी जो परमार्थस्वरूप द्वैत

ताकी अपेक्षा है । जातें यह अद्वैतशब्द निषेधपूर्वक अखंड पद
है, जैसें अहेतु शब्द है सो हेतु विना न होय है तैसा। जहां एक अक्षर
वाचक एकपद होय ताकूं अखंड पद कहिये सो यहां निषेधपूर्वक
द्वैतशब्दका प्रयत्न दोय अथ परमार्थभूत नाहीं है एक ही अर्थ है
तातें अपना प्रतिपक्षी जो द्वैत ता विना न होय । बहुरि कहा
विषाण ऐसा शब्द होय ताकरि अतिप्रसंग नाहीं है । जातें या विषा
शब्दका निषेध है सो खर शब्दकरि सहित भया तब अखंड पद न
खरविषाण शब्द भया सो एक पद भया तब याका अर्थ किछू वस्तु न
ताका निषेधै भी वस्तु नाहीं ताके समान यह अद्वैत शब्द है नाहीं या
तो प्रतिपक्षी द्वैतशब्द है ताका परमार्थभूत अर्थ विद्यमान है ।
निषेधपूर्वक अखंड पद जो द्वैत ता विना अद्वैत नाहीं है । याहातें सा
व्यवचन ऐसा है—जो सन्मात्र पदार्थ प्रतिषेध्य कहिये निषेध क
योग्य वस्तु तिस विना प्रतिषेध कहूं नाहीं होय है । जो अखरवि
णकी तरह होय तो ताका सन्मात्र पदार्थ ही नाहीं तातें ऐसा
प्रतिषेध्य विना भी होय है । बहुरि कहै कि दूसरेनें मान्या जो अ
याके कारण द्वैत ताका प्रतिषेधतें अद्वैत सिद्ध होय है तब तेरे
द्वैत की सिद्धि कैसें न होय ? बहुरि अद्वैतवादी कहै—जो हम अ
याकूं वस्तुभूत मानै नाहीं, प्रमाणतें अविद्या सिद्ध होय नाहीं,
द्वैतकी सिद्धि न होय । जो ब्रह्मकूं अविद्यावान मानिये तौ बड़ा
आवै । बहुरि ब्रह्मकूं निर्दोष मानिये तौ अविद्याकै अनर्थकपणा
बहुरि याकै अविद्या नाहीं है ऐसा अलिन अविद्याका अविद्य
कल्पिये है । बहुरि यह अविद्या ब्रह्मतें दूसरी है ऐसा कोई प्र
भी सिद्ध न होय है । बहुरि अनुभवतें अविद्या है ऐसें ब्रह्म अनु
सहित होय है । तातें प्रमाणरूप ज्ञानें बाधित अविद्या होय

अविद्याकै अध्यात्मपणका प्रसंग आवै है। बहुरि ब्रह्मकूं जानें विना अविद्याकूं कैसें जानें? बहुरि ब्रह्मकूं जाणें अविद्याका अनुभव विना बाधना न होय है जातें वस्तुभूत होय तब बाधा सभवे है। बहुरि अविद्यावान पुरुष अविद्याकूं निरूपण करनेकूं समर्थ न होय तातें वस्तुके वर्तनकी अपेक्षा तो अविद्या बणे नाहीं जातें वस्तु विना अन्यविषैं प्रमाणका व्यापार होय नाहीं। अर अविद्या वस्तु है नाहीं तातें अविद्याके अविद्यापणाविषैं असाधारण लक्षण ऐसा है जो 'प्रमाणकी बाधाकूं सहवेकूं समर्थ नाहीं, ऐसा जाका स्वभाव है सो अविद्या है' सो संसारीके स्वानुभवके आश्रय है तातें अद्वैतवादीकै कछू दोष नाहीं आवे है। बहुरि द्वैतवादी संसारी है सो माया प्रपंच प्रमाण बाधित है ताकूं अनेकप्रकार कल्पे है यातें द्वैतवादीकै अनेक दोष आवैं है? ताकूं कहिये—जो सकलप्रमाणनि अतीत अविद्याकूं अंगीकार करै सो काहेका परीक्षावान है। अविद्याकै भी कथंचित् वस्तुपणा मानि प्रमाणका विषयपणा मानैं। प्रमाणतैं सत् असत् का निश्चय करै सो ही परीक्षावान है। बहुरि शब्दाद्वैतवादका तथा संवेदनाद्वैतवाद एकान्तपक्षका भी ब्रह्माद्वैतपक्षके समान निराकरण जानना॥ २७॥

आगैं कोई कहै—जो अद्वैत एकान्तका निराकरण किया है तौ हम पृथक्त्व—एकान्त अंगीकार करैंगे ताकूं आचार्य कहैं है—जो ऐसैं अवधारण मत करो जातैं पृथक्त्व—एकान्त भी बाधासहित है सो ही दिखावैं हैं—

पृथक्त्वैकान्तपक्षेऽपि पृथक्त्वादपृथक्तु तौ।
पृथक्त्वे न पृथक्त्वं स्यादनेकस्थो ह्यसौ गुणः॥ २८॥

अर्थ—पृथक्त्व कहिये पदार्थ सर्व भिन्न ही हैं ऐसा एका... पक्ष होतैं पृथक्त्वनामा गु... अर गुणी इन दोऊ

पृथक्पणा कहिये भिन्नपणा होतैं ते दोऊ अपृथक् कहिये अभिन्न ही ठहरै हैं। ऐसैं यह पृथक्त्वनामा गुण ही नहीं ठहरै है। जातैं पृथक्त्वगुणकूं एककूं अनेक पदार्थनिमैं ठहऱ्या मानै है सो पृथक्त्वगुण कहना निष्फल भया। यहां ऐसा जानना जो वैशेषिक द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय ऐसैं छह पदार्थ मानैं है। अर तिनके उत्तरभेद ऐसैं है जो द्रव्य नव, गुण चौवीस, कर्म पांच, सामान्य दोय प्रकार, विशेष अनेक तथा समवाय एक है। तिनमैं गुणके चौवीस भेदनिमैं एक पृथक्त्वनामा गुण मानैं है सो यह गुण सर्व द्रव्य गुण आदि पदार्थनिकूं भिन्न भिन्न करै है ऐसा मानै है। बहुरि नैयायिक प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितंडा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रहस्थान ऐसैं सोल्ह पदार्थ मानै है तिनकूं भिन्न भिन्न ही मानै है। तिनके पदार्थनिका सर्वथा भिन्न पण होनेतैं तिनकूं पूछिये कि पृथक्त्व नामा गुणतैं द्रव्य गुण ये दोऊ अभिन्न है कि भिन्न है? जो कहै— अभिन्न हैं तौ सर्वथा भिन्नका एकान्त पक्ष कैसे ठहरै। बहुरि कहै—जो द्रव्य, गुण, पृथक्त्वगुणतैं भिन्न है तौ द्रव्य, गुण अभिन्न ठहरे। पृथक्त्वगुण न्यारा है तिमनैं द्रव्य, गुणका कहा किया किछू भी नाहीं किया जातैं पृथक्त्व गुण एक है अर अनेकमैं ठहऱ्या मानै है। ऐसैं इस कारिकाके व्याख्यानतैं सर्वथा भेदवादी नैयायिक, वैशेषिकका सर्वथा पृथक्त्व-एकान्तपक्षमैं दूषण दिखाया ॥ २८ ॥

आगै अनित्यवादी बौद्धमती पृथक्त्व-एकान्त ऐसैं मानै है—जो सर्व पदार्थ परमाणुरूप, निरंश, निरवय, विनश्वर, भिन्न भिन्न है। तिनमैं काहू प्रकार मिलाप जोड—नाहीं। ऐसा एकान्त मानै है ताकिपै करनेकी इच्छाकरि आचार्य कहैं हैं—

सन्तानः समुदायश्च साधर्म्यं च निरंकुशः।
प्रेत्यभावश्च तत्सर्वं न स्यादेकत्वनिन्हवे ॥ २९ ॥

अर्थ—जीव आदिक द्रव्यनिकै एकपणेका लोप मानिये तथा अपने पर्यायनितैं भी एकतारूप अन्वय न मानिये तौ सन्तान न ठहरै। जातैं क्रमरूप पर्यायनिमैं जीवादि द्रव्य अन्वय रूप होय सो सन्तान है, अर सो सन्तान क्षणिक पक्षकरि पर्यायनिकै सर्वथा भेद ही माननेमैं सन्तान परमार्थभूत न बनैं। अन्य सन्तानकी तरह ठहरै। बहुरि समुदाय भी न ठहरै जातैं एकस्कन्धमैं अपने अवयवनितैं एकता होय सो समुदाय है, यह समुदाय भी सर्वथापृथक्त्वपक्षमैं न बनैं। बहुरि साधर्म्य भी न ठहरै। समानधर्म जिनकै हैं तिनकै समानपरिणामनिकी एकताकूं साधर्म्य कहिये है सो पृथक्त्व एकान्तपक्षमैं एकताका लोप होतैं यह भी न बनैं। बहुरि प्रेत्यभाव कहिये परलोक सो भी न ठहरै। मर मर कर फेर फेर उपजना ताकूं परलोक कहिए हैं सो दोऊ भवमैं एक आत्माका लोप मानें यह भी न बनै। तथा वर्तमानमैं इसभवमै भी बाल्य, यौवन, वृद्धपणा आदि अनेक अवस्था होय है तिनमैं एकपणाका प्रत्यक्ष अनुभव है सो यह अनुभव भी पृथक्त्वएकान्तपक्षमैं निरोध्या जाय तब देने-लेनेका व्यवहार भी नष्ट होजाय है। बहुरि सन्तान, समुदाय, साधर्म्य अर परलोक ये निरंकुश हैं—अवश्य हैं तथा प्रमाणसिद्ध हैं तिनका अभाव कैसैं मानिये अर एकपणाका लोप होतं पृथक्त्व-एकान्तपक्ष श्रेष्ठ नाहीं ॥ २९ ॥

आगैं पृथक्त्वएकान्तपक्षहीविर्षे अन्य दूषण दिखावते सते आचार्य कहैं हैं—

सदात्मना च भिन्नं चेज्ज्ञानं ज्ञेयाद् द्विधाप्यसत्।
ज्ञानाभावे कथं ज्ञेयं बहिरन्तश्च ते द्विषाम् ॥ ३० ॥

अर्थ—ज्ञान है सो ज्ञेय वस्तुतैं सत्स्वरूपकरि भी जो भिन्न मानिये तो दोऊ ही प्रकार असत्स्वरूप होय। ज्ञानतैं सत् भिन्न मानिये तब ज्ञान असत्रूप होय अर ज्ञेयतैं सत् भिन्न मानिये तो ज्ञेय असत्स्वरूप होय है। बहुरि ज्ञानतैं हू सत् भिन्न मानिये तो ज्ञानका अभाव होतैं ज्ञेयका भी अभाव ही होय जातैं ज्ञान ज्ञेयका अविनाभाव तौ परस्पर अपेक्षातैं सिद्ध है सो एकका अभाव होतैं दूजेका भी अभाव होय। यातैं आचार्य कहैं हैं–हे भगवन्! तुम्हारे द्वेषी जे सर्वथा एकान्तवादी तिनकै बाह्य अर अंतरंग ये ज्ञेय ते कैसैं ठहरैं? । बाह्य ज्ञेय तो घट पट आदिक अर अंतरंग ज्ञेय जीवात्मा तथा ज्ञान आदिक इन सबनिका अभाव ठहरै। तातैं पृथक्त्व–एकान्त कहनेवाळे बौद्ध तथा वैशेषिकनि पर उलहना (उपालम्भ–दूषण) सत्यार्थ है॥ ३०॥

आगैं बौद्धमतकूं विशेषकरि दूषण दिखावै हैं—

सामान्यार्था गिरोऽन्येषां विशेषो नाभिलप्यते।
सामान्याभावतस्तेषां मृषैव सकला गिरः॥ २१॥

अर्थ—अन्येषां कहिये अन्य जे बौद्धमती तिनके मतमैं गिरः कहिये वाणी—वचन हैं सो सामान्यार्था कहिए सामान्य है अर्थ जिनका ऐसे हैं तिन वचननिकरि विशेष जो वस्तुका निजलक्षण सो नाहीं कहिए है। तिन बौद्धमतानिकै सामान्यका अभावतैं समस्त वचन हैं ते मिथ्या ठहरै हैं। भावार्थ–बौद्ध ऐसैं मानै है कि वचन तो सामान्यमात्रकूं कहै है अर सामान्य वस्तुभूत नाहीं बुद्धिकरि कल्पिये हैं अर वस्तुका स्वलक्षण है सो अनिर्देश्य है वचनगोचर नाहीं, ताकूं आचार्य कहैं हैं–जो सामान्य तौ वस्तुभूत नाहीं अर विशेष स्वलक्षण है सो वचनकै अगोचर है तौ ऐसैं वचन तो तिनकै मतमैं सर्व ही मिथ्या ठहरै। अर [illegible] । विना मत कैसै थापै हैं तातैं तिनका मत भी झूठा ही है॥२१॥

आगैं वादी कहै—जो पृथक्त्व-एकान्त निर्दोष नाहीं तातैं अद्वैत एकान्तकी तरह यह भी मति होहु। किंतु तिन दोऊनका एकरूप एकान्त श्रेष्ठ है ऐसैं मानते वादीकै तैसैं सर्वथा 'अवक्तव्यतत्त्व है' ऐसैं आचार्य कहै हैं—

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते॥ ३२॥

अर्थ—जे स्याद्वादनयके विद्वेषी हैं तिनकै जैसैं अस्तित्व, नास्तित्व, एकत्व, अनेकत्व, परस्पर विरोधतैं नाहीं तिष्ठै हैं तैसैं ही पृथक्त्व, अपृथक्त्वभाव भी परस्पर विरोधस्वरूप हैं सो एकस्वरूप नाहीं ठहरै हैं जातैं यह भी प्रतिषेधस्वरूप है। जो दोय विरुद्ध धर्मरूप होय सो सर्वथा एकान्तपक्षमैं एकरूप न ठहरैं। बहुरि जो सर्वथा अवक्तव्यतत्त्व मानैं ताकै भी "तत्त्व अवक्तव्य है" ऐसा वचन भी कहना युक्त न होय। तातैं अवक्तव्य एकान्त मानना भी श्रेष्ठ नाहीं॥ ३२॥

आगैं एकत्व आदिक एकान्तके निराकरणकी सामर्थ्यतैं अनेकान्ततत्त्व सिद्ध भया तोहू तिसके ज्ञानकी प्राप्ति दृढ करनेकै अर्थ तथा कोई अनेकान्ततत्त्वविषैं अन्य प्रकार आशङ्का करै ताकै निराकरणके अर्थ, तिसके एकत्वानेकत्वके सप्तभंग प्रकट करनेके इच्छुक आचार्य तिसके मूल दोय भंगस्वरूपकूं जीवादिवस्तुकै कहै हैं—

अनपेक्षे पृथक्त्वैक्ये ह्यवस्तु द्वयहेतुतः।
तदेवैक्यं पृथक्त्वं च स्वभेदैः साधनं यथा॥ ३३॥

अर्थ—हि कहिये निश्चयतैं पृथक्त्व अर एकत्व है ते परस्पर अपेक्षारहित होय तौ दोऊ ही अवस्तु ठहरैं [जातैं अवस्तु ठहरै] जातैं दोऊके अवस्तुपणाका साधक परस्पर निरपेक्षपणा हेतु है। एकत्वकी अपेक्षा विना पृथक्त्व अवस्तु है बहुरि पृथक्त्वकी अपेक्षा

विना एकत्व अवस्तु है। ऐसैं निरपेक्ष दोऊ ही अवस्तु ठहरै हैं। बहुरि परस्पर सापेक्ष दोऊ हेतुतैं सो ही पृथक्त्व अर एकत्व परमार्थ हैं, वस्तु हैं। यहां दृष्टान्त–जैसैं साधन कहिये हेतु ताका स्वरूप बौद्धमती पक्षधर्म, सपक्षसत्त्व, विपक्षव्यावृत्ति ऐसैं अपने तीन भेदनि–करि त्रिरूप एक मानैं है। ताकैं भी अन्वय, व्यतिरेक, ये दोय भेद मानै है। तहां जो दोऊ परस्पर सापेक्षपणाहीतैं दोऊ वस्तुभूत साधन ठहरै। तैसैं ही पृथक्त्व अर ऐक्य दोऊ सापेक्ष ही वस्तुरूप है निरपेक्ष अवस्तु है। यहां कोई पूछै–जो पृथक्त्व ऐक्यके एकान्तका निषेध तौ पहले किया ही था फेर यह कारिका कौन अर्थ करी ताका समाधान–जो इसका विधि–निषेध के अनुमानका प्रयोग जनावनेकूं फेर स्पष्ट–करि कह्या है, परस्पर निरपेक्ष सापेक्षके दोऊ हेतु जताये हैं। बहुरि साधनका उदाहरण है सर्वमतनें साधनकूं अन्वय व्यतिरेकस्वरूप माना है सो परस्पर सापेक्ष विना साधन सिद्ध होय नाहीं तब अपना अपना मत कैसैं सिद्ध करैं तातैं दृष्टान्त भी युक्त है। सर्वथा एकान्त मानैं किछू भी सिद्ध न होय है॥ ३३॥

आगै वादी आशंका करै है–जो एकपणाकी प्रतीतितैं तथा पृथक्–पणाकी प्रतीतितैं जीवादिकपदार्थनिकै एकपणा अर पृथकपणा कैसैं बनैं हैं। एकपणा तौ प्रत्यक्ष दीखै नाहीं अर पृथकपणा सत्रूप एक मानिये तौ कैसे ठहरै ऐसैं प्रतीतिकै निर्विषयपणा आवै है। ऐसी आशंका होते याका विषय दिखावनेकूं मनकरि स्वामी समन्तभद्र आचार्य कहै हैं—

> सत्सामान्यात्तु सर्वैक्यं पृथग्द्रव्यादिभेदतः ।
> भेदाभेदव्यवस्थायामसाधारणहेतुवत् ॥ ३४॥

१

अर्थ—तु कहिये पुन परस्परसापेक्षातै तौ पहली कारिकाविर्षे जनाया अर यहां फेर ताका विशेषणतै आश्रयकरि कहे हैं। स सामान्यतै तो सर्व जीव आदिक वस्तु हैं सो ऐक्य कहिये एकस्वरूप हैं यातै एकपणाकी प्रतीति निर्विषय नाहीं है। बहुरि न्यारे न्यारे जीव आदिक द्रव्य हैं तिनके भेदतै पृथकपणा है यातै पृथकपणाकी प्रतीति निर्विषय नाहीं है ऐसैं भेदाभेदकी विवक्षा होतें असाधारण हेतु मानिये है। सामान्य तौ अभेद विवक्षाकरि हेतु एक मानिये है। बहुरि भेद-विवक्षाकरि विशेष ताके पक्ष-धर्म आदि भेद मानिये हैं तैसै जानना ॥३४॥

आगै वादी शंका करै है—जो एकपणा अर पृथकपणा भेद-अभेदका विवक्षातै साधे सो विवक्षा अर अविवक्षाका तौ किछू वस्तु विषय नाहीं, वक्ताकी इच्छा मात्र है। तिसके वशतै तौ एकपणा, पृथकपणा ठहरै नाहीं। ऐसैं माननेवाले वादीकूं आचार्य कहैं हैं—

विवक्षा चाविवक्षा च विशेष्येऽनतधर्मिणि।
यतो विशेषणस्यात्र नासतस्तैस्तदर्थिभिः ॥ ३५ ॥

अर्थ—अनंत हैं धर्म जामैं ऐसा जो धर्मी विशेष्य कहिये विशेपण जामैं पाइये ऐसा जीव आदिक पदार्थ ताविर्षे विवक्षा बहुरि अविवक्षा करिये हैं सो सत् विशेषणकी करिय है, असत् विशेषणकी न करिये हैं। कोई पूछै कि ऐसी विवक्षा, अविवक्षा कौन करै है? ताका उत्तर—जे एकत्व, पृथक्त्व आदि विशेषणनिके अर्थी हैं ते करैं हैं। यहां विवक्षा, अविवक्षा वक्ताके पदार्थ कहने की न कहनेकी इच्छा-रूप है सो जाकूं कहने की इच्छा करै सो सत्रूप—विद्यमान होय ताहीकी करै। असत् अविद्यमानका तौ न करै। सर्वथा असत्के कहनेकी इच्छा किये तिसतै कहा अर्थ साधै। सर्वथा असत् तौ गधाके सींगकी तरह अर्थक्रियाकरि शून्य है। ऐसैं पदार्थमैं एकत्व, पृथक्त्व

आदि विशेषण सत्‌रूप होय तिनहीकूं तिनिके अर्थीनिकी विवक्षा, अविवक्षा होय है। असत्‌रूपकी न होय है। ऐसा जानना ॥ ३५ ॥

आगें जो वादी ऐसें कहै है कि पदार्थनिकै परमार्थतें भेद हा है। अभेद कहिये है सो उपचारतें है। जो दोऊ परमार्थतें कहिये तौ विरोधनामा दूषण आवै। बहुरि कोई अन्य ऐसें कहै है–जो पदार्थनिकै परमार्थतें अभेद ही है अर भेद कहिये है सो कल्पनामात्र है। तथा दोऊ मानें विरोध आवै है। तिन दोऊ वादीनिकूं आचार्य कहै हैं—

प्रमाणगोचरौ सन्तौ भेदाभेदौ न संवृती।
तावेकत्राविरुद्धौ ते गुणमुख्यविवक्षया ॥ ३६ ॥

अर्थ—पदार्थनिविषै भेद अर अभेद ये दोऊ हैं ते सत्‌रूप परमार्थभूत है। जातैं ये प्रमाणगोचर है—प्रमाणके विषय हैं। न संवृत कहिये उपचारस्वरूप नाहीं है। यहां भेदपक्ष, अभेदपक्ष, भेदाभेदपक्ष, ऐसैं तीन पक्ष कथंचित परमार्थभूत सिद्ध करने। बहुरि हे भगवन्! तुमारे मतमैं भेद अर अभेद सत्यार्थरूप है ते एकवस्तुविषै विरुद्धरूप नाहीं। जिनके मतमैं परस्पर निरपेक्षरूप भेदाभेद है तिनहीकै विरुद्धरूप होय है जातैं सर्वथा एकांत प्रमाणगोचर नाहीं है। बहुरि यहां प्रमाणगोचर कह्या सो प्रमाणका स्वरूप आगे कहैंगे ॥ ३६ ॥

ऐसैं इस परिच्छेदमैं कथंचित् अद्वैत है कथंचित् पृथक्त्व है ऐसैं मूल दोय भंग विधि प्रतिषेध कल्पनाकरि एकवस्तुविषै अविरोध करि प्रश्नके वशतैं दिखाय। शेष पंच भंगनिकी प्रक्रिया पूर्वे कही तैसैं ही जोड़नी। स्यात् एकत्व पृथक्त्व, स्यात् अवक्तव्य, स्यात् एकत्व अवक्तव्य, स्यात् पृथक्त्व अवक्तव्य, स्यात् एकत्व पृथक्त्व अवक्तव्य जानने। इनके नययोग पूर्वोक्तप्रकार लगावने ॥ ३६ ॥

चौपाई ।

एक अनेक पक्ष एकन्त । तजै होय निजभाव जु सत ॥
यातै स्वामि वचनतै साधि । स्याद्वाद धारो तजि आधि ॥१॥

इति श्री स्वामी समन्तभद्र विरचित देवागमस्तोत्रकी
देशभाषामय वचनिकाविषै स्याद्वादस्थापनरूप
द्वितीय अधिकार समाप्त भया ।



तीसरा-परिच्छेद ।



आगैं अब नित्य, अनित्य पक्षका तीसरा परिच्छेदका प्रारंभ है ।

दोहा।

नित्य अनित्य जु पक्षकी, कथनी का प्रारंभ ।
करू नमू मंगल अरथ, जिन-श्रुत-गणी अदंभ ॥ १ ॥

तहां प्रथम ही अस्तित्व, नास्तित्व, एकत्व, पृथक्त्व-एकान्तका प्रतिषेधकरि स्थापन किया। अब याके अनंतर नित्यत्व, अनित्यत्व एकान्तके निराकरणका प्रारंभ है । तहां प्रथम ही नित्यत्वएकान्तविषैं दूषण दिखावैं हैं---

नित्यत्वैकान्तपक्षेऽपि विक्रिया नोपपद्यते ।
प्रागेव कारकाभावः क प्रमाणं क तत्फलम् ॥ ३७ ॥

अर्थ---नित्यत्वैकांत कहिये कूटस्थ सदा एकसा रहै ऐसे वस्तुका अभिप्राय ताका पक्ष होतैं तिस कूटस्थविषैं विक्रिया कहिये परिणमन-अवस्थातैं अन्य अवस्था होना ऐसी क्रिया तथा परिस्पंद कहिये चलना-क्षेत्रतैं अन्य क्षेत्र प्राप्त होना ऐसी विविध अनेक क्रिया न बनैं । बहुरि कारक कहिये कर्त्ता कर्म आदिक तिनका कूटस्थमैं पहले ही अभाव है । अवस्था जाकी पलटै नाहीं तामैं कारककी प्रवृत्ति कैसैं बनैं । बहुरि जब कारकका अभाव ठहर्या तब प्रमाण कहां अर प्रमाणका फल प्रमिति कहां ? । जातैं प्रमाता कर्त्ता होय तब प्रमाण भी सम्भवै । अकारक प्रमाता होय नाहीं । जो काहू ही

प्रति साधन न होय सो तौ अवस्तु ठहरे तब आत्माकी भी सिद्धि न होय। ऐसैं नित्य एकान्तमैं दूषण दिखाया॥ ३७॥

अब आगैं सांख्यमतवादी कहैं हैं कि हम अव्यक्तपदार्थ कारणरूप है ताकूं सर्वथा नित्य मानैं हैं। अर कार्यरूप व्यक्तपदार्थ है ताकूं अनित्य मानैं हैं तातैं विक्रिया बनैं है। तहां व्यक्त कहिये जो पदार्थ काहूक निमित्ततैं छिप्या होय ताका प्रकट होना ऐसी तो अभिव्यक्ति अर नवीन अवस्था होना सो उत्पत्ति है। ऐसैं व्यक्त पदार्थकूं अनित्य मानि विक्रिया होती कहैं हैं तामैं दूषण दिखावैं हैं—

प्रमाणकारकैर्व्यक्तं व्यक्तं चेदिन्द्रियार्थवत्।
ते च नित्ये विकार्यं किं साधोस्ते शासनाद्बहिः॥ ३८॥

अर्थ—नित्यत्वपक्षका एकान्तवादी सांख्यमती कहै—जो व्यक्त कहिये अभिव्यक्ति अर उत्पत्तिरूप हैं ते प्रमाण अर कारकनिकरि व्यक्त—प्रगट होय हैं। यहां दृष्टान्त कहैं हैं—जैसे इन्द्रिय अपने विषयरूप पदार्थकूं व्यक्त—प्रगट करे है तैसैं प्रमाणकारक व्यक्तपदार्थकूं प्रगट करै है ताके निषेधकूं आचार्य कहैं हैं—जो हे भगवन्! तिन नित्यत्वएकान्तवादीनिकै तौ ते प्रमाण अर कारक भी नित्य ही हैं। तातैं सर्वथा नित्य कारणनितैं अनित्य कार्य होय नाहीं। तातै ते वादी तुम्हारे साधु आप्तकै शासन मततैं बाह्य हैं। तिनकै विकार्य कहिये अवस्था पलटनेरूप विकार—स्वरूपकार्य कहा सिद्ध होय? किछू भी सिद्ध न होय। जो नित्य प्रमाण कारकनितैं अभिव्यक्ति, उत्पत्तिरूप व्यक्त पदार्थनिकूं प्रगट भये कहैं तो बनैं नाहीं तथा तिन व्यक्तनिके भी नित्यपणा आया चाहिये सो है नाहीं ऐसैं तिनकै नित्य एकान्तपक्षमैं विक्रिया न बनैं॥ ३८॥

आगैं फेर वादी कहै—जो हम कार्य—कारणभाव मानैं हैं तातैं हमारे किछू विरुद्ध नाहीं है ताकूं आचार्य कहैं हैं—यह तो विना विचारया

सिद्धान्त है। कार्य उपजे है तामैं दोय विकल्प हैं—या तो सत्‌रूप उपजता कहना कै असत्‌रूप उपजता कहनां, इन दोऊ विकल्परूप पक्षमैं दूषण दिखावै है—

यदि सत्सर्वथा कार्यं पुंवन्नोत्पत्तुमर्हति ।
परिणामप्रक्लृप्तिश्च नित्यत्वैकान्तबाधिनी ॥ ३९ ॥

अर्थ—यदि कहिये जो कार्य है सो सर्वथा सत् है, कूटस्थके समान है ऐसैं कहिये जो सांख्यमती जैसें पुरुषकूं नित्य मानै है तैसैं कार्य भी नित्य ठहरै–उपजने योग्य न ठहरै। बहुरि कहै कि वस्तुके अवस्थातैं अन्य अवस्था होय है ऐसैं परिणामरूप कार्य उपजै है ? तातैं कहिये–तौ वस्तु परिणामी ठहरै है सो यह परिणामकी पलटनेरूप प्रक्लृप्ति कहिये केवल कल्पना ही है सो नित्यत्व एकान्तकी बाधनेवाली है ही। बहुरि कहै कि कार्य असत्‌रूप उपजै है तौ सांख्य मतके सिद्धांतमैं जो यह कह्या है कि असत्का करना असंभव है सो ऐसै सिद्धान्तका विरोध आवै है। ऐसैं नित्यत्व एकान्तके वादी जे सांख्यमता आदिक तिनकै कार्य उपजनेका अभाव आवै है ॥ ३९ ॥

आगैं कार्यके अभाव होनेमैं नित्यत्व एकान्तवादीनिकै दोष आवै है तिनकूं प्रगट कहै हैं—

पुण्यपापक्रिया न स्यात् प्रेत्यभावफलं कुतः ।
बंधमोक्षौ च तेषां न येषां त्वं नासि नायकः ॥ ४० ॥

अर्थ—हे भगवन् ! जिनकै तुम अनेकान्तके उपदेशक आप्त नायक स्वामी नाहीं हो तिन सर्वथा नित्यत्वादि एकान्तवादीनिकै पुण्य–पापकी क्रिया–काय, वचन, मनकी शुभ, अशुभ प्रवृत्तिरूप तथा उपजनेस्वरूप क्रिया नाहीं बनै है याहीतैं परलोक भी नाहीं बनैं है। क्रियाका फल सुख दुःख आदि काहू तैं होय अपि तु नाहीं

अन्येष्वनन्यशब्दोऽयं संवृतिर्न मृषा कथम्।
मुख्यार्थः संवृतिर्न स्याद्विना मुख्यान्न संवृतिः॥ ४४॥

अर्थ—यहां क्षणिकवादी बौद्ध कहै है जो अन्यनिर्वै अनन्य ऐसा शब्द है सो संवृति कहिये व्यवहारमात्र उपचार करि य हैं। भावार्थ—संतानी जे क्षण हैं तिनतैं संतान जो क्षणानिके प्रवाहकी परिपाटी, ताकूं ऐसैं कहिये है जो यह क्षणनिका संतान है सो ऐसे क्षण ही हैं तिनतैं अन्य संतान किछू परमार्थभूत नाहीं है। परमार्थ देखिये तब तौ क्षण अन्य ही है अर संतानतैं अनन्य कहिये हैं सो यह व्यवहार—उपचार है। ऐसैं क्षणिकवादी कहैं ताकूं आचार्य कहै हैं—जो अन्यनिर्वै अनन्य कहना सर्वथा ही संवृति है—उपचार है तो मृषा कहिये असत्य कैसें न होय यह तो झूठ ही है। बहुरि कहै जो संतान है सो मुख्यार्थ ही है—सत्यार्थ ही है तौ जो मुख्यार्थ होय सो 'संवृतिर्न' कहिये उपचार न होय है। बहुरि कहै जो संतान तो संवृति ही है। तो संवृतितै मुख्य प्रयोजन सत्यार्थ जे प्रत्यभिज्ञान आदिक ते परमार्थभूत संतानविना कैसे सधैं। जैसें माणवकविर्षे अग्निका अध्यारोप करि उपचार करिये तब माणवकतैं अग्निका कार्य तो सधै नाहीं तैसें उपचरित संतान है सो संतानिनिकैं नियमका कारण न होय। बहुत संवृति उपचार है सो भी मुख्य सत्यार्थविना तो होय नाहीं। जैसें सांचा स्पर्श होय तो ताका चित्राम भी होय अर साचा स्पर्श ही न होय तब ताका चित्राम भी कैसें होय। बहुरि संतान परमार्थभूत न ठहरै तब क्षण जे संतानी तिनकैं संकरपणा आवै है जातैं ये संतानी जे क्षण तिनकैं कार्य प्रति नियमका कारणपना न बनैं है न्यारे होय एक कार्य करैं तब संकर दोष आवै॥ ४४॥

यद्यसत्सर्वथा कार्यं तन्मा जनि खपुष्पवत् ।
मोपादाननियामोऽभून्माश्वासः कार्यजन्मनि ॥ ४२ ॥

अर्थ—जो कार्य है सो सर्वथा असत् ही उपजै है ऐसैं मानिये तौ यह कार्य आकाशके फूलकी तरह मत होहु । बहुरि उपादान आदिक कार्यके उत्पन्न होनेकूं कारण हैं तिनका नियम न ठहरै। बहुरि उपादानका नियम न ठहरै तब कार्यके उपजनेका विश्वास न ठहरै । जो इस कारणतैं य...। कार्य नियमकरि उपजैगा । जैसे यव अन्न उपजनेका यवहीन ही है ऐसा उपादान कारणका नियम होय तिस कारणतैं सो ही कार्य उपजनेका विश्वास ठहरै सो क्षणिकएकान्तपक्षमैं असत् कार्य मानैं तब यह नियम न ठहरै ॥ ४२ ॥

ऐसैं होतैं क्षणिकएकान्त पक्षविषैं अन्य दोष आवै हैं सो कहैं हैं—

न हेतुफलभावादिरन्यभावादनन्वयात् ।
सन्तानान्तरवन्नैकः सन्तानस्तद्वतः पृथक् ॥ ४३ ॥

अर्थ—क्षणिकएकान्तपक्षविषैं हेतुभाव अर फलभाव, आदि शब्दतैं वास्य कहिये वासनायोग्य, वासक कहिये वासना देने वाला, बहुरि कर्म अर कर्मफलके सबन्ध अर प्रवृत्ति आदि ये भाव नाहीं सभवैं हैं। जातैं ये भाव अन्वय विना होय नाहीं । जैसैं भिन्न अन्य सन्तान है तैसैं सन्तानी भी भिन्न ही है, से भी अन्यसन्तानकी तरह हैं। बहुरि सन्तानी जे क्षण तिनतैं भिन्न अन्य सन्तानकी ज्यौं सन्तान किछू वस्तु है नाहीं तिन सन्ता... भिन्न एकताहीकूं सन्तान कहिये है । ऐसैं अन्यभावतैं अन्वय विना हेतुफलभाव आदिक न बनैं। सन्तान सन्तानीकै अन्वय होय ... ही यथार्थ सन्तान है जिसहीकै होतैं हेतुफलभावादिक बनैं हैं ॥ ४३ ॥

आगैं पर क्षणिकवादीके वचनका उत्तर आचार्य कहैं हैं—

र्थ सर्वविकल्पनितैं रहित अवस्तु ही ठहरै है। जातैं सर्वधर्मनितैं त भया। तब विशेषण, विशेष्यभावतैं भी रहित भया तातैं अवस्तु भया ॥ ४६ ॥

बहुरि सर्वथा विशेष विशेषण रहित होय ताका प्रतिषेधकरना भी ने नाहीं तातैं वस्तु ही विषैं प्रतिषेध करना बनै है सो ही कहैं हैं—

द्रव्याद्यन्तरभावेन निषेधःसञ्ज्ञिनःसतः ।
असद्भेदो न भावस्तु स्थानं विधिनिषेधयोः ॥ ४७ ॥

अर्थ—जो सत्तासहित सञ्ज्ञी कहिये सद्भावान पदार्थ है ताहीका द्रव्यान्तर, क्षेत्रान्तर, कालान्तर भावान्तर इनकरि अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल भावनिकी अपेक्षा निषेध कीजिये हैं। बहुरि असत्तारूपका तौ निषेध सम्भवै नाहीं सर्वथा अवस्तु तौ प्रतिषेधका विषय नाहीं। जातैं असत् भेदरूपहै सो तो अवस्तु है, सो तो विधि, निषेधका स्थानही नाहीं है। कथंचित् सत् विशेष पदार्थ ही विधि अर निषेधका आधार है। तातैं ऐसा आया कि अन्य वादीनैं मान्या जो सर्व धर्मनिकरि रहित तत्व सो अवस्तु है ॥ ४७ ॥

सो पदार्थ अवक्तव्य है ऐसा कहैं हैं—

अवस्त्वनभिलाप्यं स्यात् [illegible] ।
[illegible] ति [illegible] र्ययात् ॥ ४८ ॥

आगें क्षणिकवादी बौद्धमती कहै हैं जो संतान परमार्थभूत कहिये। तो एक संतान सतानीनि तें भिन्न है ? अथवा अभिन्न है ? या भिन्नाभिन्नरूप है ? अथवा दोऊ भावनितैं रहित है ? ऐसा सिद्ध न होय है। तातैं ऐसें है सो कहै हैं—

चतुष्कोटेर्विकल्पस्य सर्वान्तेषूक्तयोगत. ।
तत्वान्यत्वमवाच्य च तयो' सतानतद्वतो' ॥ ४५ ॥

अर्थ—क्षणिकवादी बौद्ध ऐसें कहैं जो सतान अर सतानी दोऊ सत्‌रूप हैं ? कि असत्‌रूप हैं ? अथवा सत् असत् इन दोऊ रूप है ? या दोऊरूप नाहीं हैं ?। ऐसें सर्व ही धर्मनिविषै इनचार विकल्परूप वचनके कहनेका अयोग है। किछू कह्या जाता नाहीं। ऐसें ही सतान, सतानीकै भी तत्पना, अन्यपना कहनेका अयोग है। जो वस्तुकू धर्मनितैं अनन्य कहिये तो वस्तुमात्रही ठहरै। बहुरि वस्तुतै अन्य कहिये तो इस वस्तुका यह धर्म है ऐसें कहना न बनें। दोऊ कहिये तो दोऊ दोष आवै। दोऊ रहित कहिये तो वस्तु निःस्वभाव ठहरै। यातैं सतान, सतानीकै तत्व, अन्यत्व पना अवक्तव्य ही सिद्ध होय है ॥ ४५ ॥

ऐसै बौद्ध कहै हैं ताकू आचार्य कहै हैं जो ऐसें कहने वालें कू ऐसा कहना—

अवक्तव्यचतुष्कोटिर्विकल्पोपि न कथ्यता ।
असर्वान्तमवस्तु स्यादविशेष्यविशेषणम् ॥ ४६ ॥

अर्थ— क्षणिकवादीकू आचार्य कहै हैं जो सर्वधर्मनिविषैं चार कोटिके विकल्प कहनेका वचन अयोगहै तौ चार कोटिका विकल्प अवक्तव्य है ये वचन भी मत कहो। बहुरि यदि किछू ही न कहना प्रतीति उपजीवनका भी अयोग आवै। बहुरि ऐसें होतें

धर्म अवक्तव्य हैं तौऊ परके जताबनेकूं उपचाररूप वचनकरि 'अवक्तव्य, ऐसा वचन कहिये है। ता वादीकूं कहिए कि अवक्तव्य केसें हैं ? स्वरूपकरि अवक्तव्य हे ? कि पररूप करि है ?, कि दोऊरूप करि हे। कि तत्वस्वरूप करि है ?, या मृषास्वरूपकरि हे ? ऐसें विचारिये तो कोई भी पक्ष न ठहरै हे। जो स्वरूपकरि अवक्तव्य कहे तो अवक्तव्य कैसें ? जो अपना रूप हैं सो कहनेमे आवै है। बहुरि पररूपकरि अवक्तव्य है तो स्वरूपकरि वक्तव्य ही ठहरै। बहुरि दोऊ पक्ष माननेमें दोऊ दूषण आवें हैं। बहुरि तत्वकरि अवक्तव्य कहे तो व्यवहारकरि वक्तव्य कहना ठहरै। अर मृषापनाकरि अवक्तव्य कहना न कहना तुल्य ही है। ऐसें बहुत कहने ते कहा ? सर्वथा अवक्तव्य कहनेमें तौ अवक्तव्य है ऐसा कहना भी न बनें है तब अन्यकूं प्रतीति उपजावनेका अयोग हे ॥ ५० ॥

आगैं सर्वथा अवक्तव्य कहनेवाले वादीकूं कहैं हैं कि अवक्तव्य कैसैं कहे है ? एसैं पूछकर दोष दिखावें हैं—

अशक्यत्वादवाच्य किमभावात्किमबोधतः ।
आद्यन्तोक्तिद्वय न स्यात् किं व्याजेनोच्यतास्फुटम् ॥५०॥

अर्थ—अवक्तव्यवादीकूं कहे है जो तू अवक्तव्य कहे है। सो अशक्यत्वात् कहिये तेरे कहनेकी सामर्थ्य नाहीं है तिसपनाकरि कहे है। कि अभाव हे तातैं अवक्तव्य कहे है। कि अबोधत कहिये तेरे तत्त्वका ज्ञान नाहीं है तातैं अवक्तव्य कहै है। ऐसैं तीन पक्ष पूछे। इन सिवाय अन्य पक्ष कहै तो इनहीमें अन्तर्भूत होय हैं। तहा आदिका पक्षतो अशाक्यपना अर अतका अबोध, ये दोऊपक्ष तो बनै नाहीं हैं। तातैं क्षणिक मतका आप्त बुद्ध सुगतकै सर्वज्ञपना कहैं हैं तथा क्षमा, मैत्री, ध्यान, दान, वीर्य, शील, प्रज्ञा, करुणा, उपाय प्रमोद, स्वरूप दश बल

है सो सर्व धर्मनिकरि रहितकूं नाहीं कहैं है। सत्, असत् इत्यादि अनेकान्तात्मककूं वस्तु कहैं है। सो ऐसें होतें द्रव्य, क्षेत्र, काल, अपेक्षा प्रक्रियाके विपर्ययकरि वरतैं वस्तुकों ही अवस्तु कहैं हौं। बहुरि सर्वथा एकान्तकरि सर्व धर्मनिकरि रहित ताकूं अवस्तु माना है सो परवादीका कल्पनाकी अपेक्षा लेकर कहनाहै। परमार्थतैं जो सर्व धर्मनिकरि रहित है तातैं अवस्तु है ऐसा कहनाभी हमारें नाहीं हैं। हमारें यहां ऐसें है— जैसें घटकूं अन्य घटकी अपेक्षा अघट कहिये तैसें अन्य वस्तुकों ही अवस्तु कहिये यामें विरुद्ध नाहीं है। जैसें काहूने कह्याकि 'अब्राह्मणकूं ल्याओ, तहाँ जानना कि ब्राह्मणतैं अन्य, क्षत्रियादिककूं बुलावै है। तहां ब्राह्मणका सर्वथा अभाव न कहै है। भावहीकूं अपेक्षातैं अभाव कहिये। तैसें ही वस्तुकूं अवस्तु कहना अपेक्षातै है। जो सर्वथा सर्व धर्मनितैं रहित है सो वस्तु तो अवक्तव्य ही है ऐसें जानना ॥ ४८ ॥

आगैं क्षणिकवादीनिकूं किछू विशेषकरि दूषण दिखावै हैं—

सर्वान्ताश्चेदवक्तव्यास्तेषां किं वचनं पुनः ।
संवृतिश्चेन्मृषैवैषा परमार्थविपर्ययात् ॥ ४९ ॥

अर्थ—अन्यवादीनिकैं जो 'सर्वान्ताः' कहिये सर्व धर्म हैं ते अवक्तव्य हैं। तिनकैं धर्मके उपदेशरूप तथा अपने तत्वका साधनरूप परके दूषणरूप वचन कहा (क्या) हैं? अपितु किछूभी नाहीं तब मौन ही सिद्ध भया। बहुरि कहै जो संवृति कहिये व्यवहारके प्रवर्तनकूं उपचाररूप वचन हैं। ताकूं ऐसें कहिये। कि परमार्थसे विपर्यय हैं उपचार है सो तो मिथ्या है, असत्य है। बहुरि फेर वादि कहै जो कोई मौनी ऐसें कहै कि 'मेरे सदा मौन है, वाका ऐसा कहना मौनतैं विरोधी है तो भी अन्यकूं जनावनेकूं कहिये सो उपचार है। तैसैं सर्व

उपज्या तानैं हन्या। बहुरि जो चित् हिंसनेका अभिप्राय करनेवाला चित्तैं तथा हिंसनेवाले चित्तैं ऐसैं दोऊनतैं अन्य उपज्या ता चित्तकै हिंसाका फल बंध था सो भया। बहुरि जिसकै बध भया सो तो नष्ट भया तब अन्यचित् सो बधतैं छूट्या।। ऐसैं हिंसाका अभिप्राय है सो अन्यनैं किया हिंसा अन्यनैं करी, अन्य बँध्या अर अन्य छूट्या ऐसैं कियेका नाश अर विना किये कहनेका प्रसंग आवै है सो हास्यका स्थान है। बहुरि संतान तथा वासना कहै तो परमार्थतैं यह भी क्षणिकवादीकैं नाहीं बनै है बहुरि स्याद्वादीकैं कथंचित् सर्वभाव निर्बाध संभवै है॥ ५१॥

आगैं क्षणिक वादीनिकैं इसही अर्थकूं विशेषकरि कहि दूषण दिखावैं हैं—

> अहेतुकत्वान्नाशस्य हिंसाहेतुर्न हिंसकः।
> चित्तसंततिनाशश्च मोक्षो नाष्टाङ्गहेतुकः॥ ५२॥

अर्थ—क्षणक्षय एकान्तवादी नाशकूं अहेतुक कहैं हैं। जो वस्तु विनसैं है सो स्वयमेव विना हेतु विनसै है। सो ऐसा कहते हैं तौ जो हिंसा करनेवाला हिंसक है सो हिंसाका हेतु न ठहरथा। बहुरि चित्तसंतानका मूलतैं नाश होना सो मोक्ष मानैं है ताकूं आठअंग हेतुतैं भया कहै है सो न ठहरै। मोक्षका अष्टाङ्गहेतु सम्यक्त्व, संज्ञासंज्ञी, वचनकायका व्यापार, अन्तर्व्यायाम, अजीव, स्मृति, ध्यान और समाधि ये हैं। तहां सम्यक्त्व कहिये बुद्ध धर्मका अंगीकार करना, संज्ञासंज्ञी कहिये वस्तुका नाम जानना, वचन कायका व्यापार, अन्तर्व्यायाम कहिये श्वासोश्वास पवनका निरोध करना, अजीव कहिये जीवका अभाव, स्मृति कहिये पिटकत्रय शास्त्रकी चिंता, ध्यान कहिये

मानें हैं ता बुद्धकैं अज्ञान, असमर्थता कैसैं बनै ? । बहुरि मध्यम पक्ष 'अभाव, है सो बौद्धमतीकूं कहैं हैं कि अन्य व्याज कहिये छलकरि कहा (क्या)? प्रगटपनें तत्त्वका सर्वथा अभाव है ऐसैं स्पष्टकरि कहो किंतु ऐसैं कहैं ठीकपना न आवै है। मायाचारी करन अनाप्तपनाका प्रसंग आवेगा। ऐसैं सर्वथा अभाव कहतें अवक्तव्य अर शून्य मतमें किछू विशेष है नाहीं। ऐसैं बौद्धमतकैं शून्यमतका प्रसंग आवै है। बहुरि यदि ऐसा कहै कि क्षणक्षय तत्त्वका संकेत किया जाता नाहीं तातैं अवक्तव्य है। ताकूं कहिये है वस्तुका क्षणक्षय मात्र स्वरूप नाहीं सामान्य विशेष स्वरूप तथा नित्य अनित्यरूप जात्यंतर है तातैं कथंचित् संकेत करना संभवै है। प्रत्यक्षगम्य स्वलक्षणविषैं संकेत करना नाहीं है तौऊ विकल्प प्रमाणकरि गम्य है ताविषैं संकेत होय ही है। जो वचनगोचर धर्म है तिनके विषैं संकेत न संभवै ही है ऐसैं सर्वथा अवक्तव्यवादी जो क्षणिकवादी ताकैं शून्यवाद आवै है।

आगैं कहैं हैं कि याहीतैं क्षणक्षय एकान्तपक्षमें किये कार्यका तो नाश अर विना कियेका होना प्रसंग आवै है। सो ऐसा तो उपहासका ठिकाना है—

हिनस्त्यनभिसंधातृ न हिनस्त्यभिसंधिमत्।
बध्यते तद्द्वयापेतं चित्तं बद्धं न मुच्यते ॥ ५१ ॥

अर्थ—निरन्वयक्षणिक चित् है सो जो चित् प्राणीके घातनेका अभिप्राय करै है कि मैं या प्राणीकूं घातूं ऐसा अभिसंधिवाला चित् तौ नाहीं हनै है—नाहीं घाते है। जातैं जा क्षणमें अभिप्राय किया ताही क्षणमैं वह चित् है पीछैं अन्यचित् उत्पन्न हुआ। बहुरि चित प्राणीके घातनेका अभिप्राय न करै सो अनभिसंधान चित् प्राणीकूं हनै है—घातै है। जातैं जानैं अभिप्राय किया था सो विनसि गया पीछैं अन्यचित्

अर्थ—स्कंधा—रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा, संस्कार ये पांच स्कंध हैं। तहां स्पर्श, रस, गंध, वर्णकि परमाणु तो रूपस्कंध हैं। बहुरि सविकल्पक, निर्विकल्पक ज्ञान विज्ञान स्कंध हैं। अर वस्तुनिके नाम सो संज्ञास्कंध हैं तथा ज्ञान, पुण्य पापकी वासना है सो संस्कार स्कंध हैं। तिनके संतानकूं संतति कहिये सो यह स्कंधसंतति है ते असंस्कृतहैं अकार्यरूप हैं जातें इनकें संवृतिपना है—उपचारकरि बुद्धि-कल्पित हैं। बौद्धमती परमाणूनिकूं सर्वथा भिन्न ही मानै है। सो संतान समुदाय आदिहैं ते कल्पनामात्र हैं तातें तिन स्कंध संततिनिकै स्थिति उत्पत्ति, विनाश नाहीं संभवै है। जातें ये स्कंध संतति विना किये हैं कार्य कारणरूप नाहीं। बुद्धिकल्पितकैं काहेका स्थिति, उत्पत्ति विनाश होय ये गधाका सींगकी तरह कल्पित हैं। तातें पहली कारिकामें जो कह्या था कि निरूप कार्यके लिए हेतुका व्यापार मानिये है सो कहना भी बिगड़ै है। स्कंधसंतान ही झूठे तब कौन रह्या है जाके अर्थ हेतुका व्यापार मानिये। ऐसें क्षणिक एकांतपक्ष है सो श्रेष्ठ नाहीं है जैसें नित्य एकांतपक्ष श्रेष्ठ नाहीं तैसैं यह भी परीक्षा किये सबाध है ॥ ५४ ॥

आगैं नित्यत्व, अनित्यत्व ये दोऊ पक्ष सर्वथा एकांतकरि मानैतैं दूषण दिखावैं है—

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥ ५५ ॥

अर्थ—जे स्याद्वादन्यायके विद्वेषी है तिनकैं उभय कहिये नित्यत्व, अनित्यत्व ये दोऊ पक्ष एकस्वरूप नाहीं बनैं हैं जातैं दोऊ पक्षमैं विरोध हैं जैसैं जीना, मरना इनमैं विरोध है। तातैं एकस्वरूप होय नाहीं। बहुरि विरोध दूषणके भयतैं अवाच्यता कहिये अवक्तव्य एकान्त मानै

एकाम होना, समाप्ति कहिये व्यय होना ऐसें अथाहेतुक मोक्ष कहना न बनैं। ऐसें नाशकू हेतु विना कहनेमें दूषण है ॥ ५२ ॥

आगैं बौद्ध कहै कि विरूपकार्य, विसदृशकार्यके अर्थ हेतु मानिये है ताकू दूषण दिखावैं हैं—

विरूपकार्यारम्भाय यदि हेतु समागम ।
आश्रयिभ्यामनन्योऽसावविशेषादयुक्तवत् ॥ ५३ ॥

अर्थ—विरूप कार्य कहिये हिंसा अर बंध, मोक्ष, ताके प्रारंभके अर्थ हिंसक अर सम्यक्त्व आदिक अष्टाङ्गहेतुका समागम कहिये व्यापार मानिये हैं ऐसें बौद्ध कहैं ताकू आचार्य कहैं हैं। कि यह हेतु माया सो अपने आश्रयी जे नाश अर उत्पाद तिनतें अन्य नाहीं है। अनन्य कहिये अभेदरूप है। जो नाशका कारण सो ही उत्पादका कारण है। यामें विशेष नाहीं। ऐसें अयुक्त कहिये भाव, भावी अभेदरूप होंय तिन ते तिनका कारण भी भिन्न न होय तैसें पहले आकारका विनाश अर उत्तर आकारके उत्पादका कारण एक ही है तातैं जो उत्पादकू तो हेतुतैं मानैं अर नाशकू अहेतुक मानैं सो कैसें बनैं। जैसे मुद्गर घटके नाशका कारण है सो ही कपालके उत्पादका कारण है। उत्पाद, नाश दोऊ ही हेतु विना नाहीं ॥ ५३ ॥

आगैं बौद्ध मतीकू कहैं हैं कि तिहारे क्षणतें परमाणु उपजै है कि तुम स्कंधसंतति मानू हो तो उपजै है। जो कहोगे कि परमाणु उपजै है सो यामें तो हेतु, फलभावका विरोध आवैगा जैसें विनाश हेतु विना मानू हो तैसें उत्पाद भी हेतु विना मानो। बहुरि जो स्कंधसंततिकू उपज्या मानू हो तो तामें दूषण है सो दिखावैं हैं—

स्कन्धाः संततयश्चैव संवृतित्वादसंस्कृताः ।
स्थित्युत्पत्तिव्ययास्तेषां न स्युः खरविषाणवत् ॥ ५४

ऐसा प्रत्यभिज्ञान वस्तुकूं कथंचित् नित्य साधै है। बहुरि सर्व जीवादिक वस्तु हैं सो कथंचित् क्षणिक हैं जातैं कालका भेद है यहा भी प्रत्यभिज्ञान प्रमाण ही तैं सिद्ध है जातैं क्षणिकविनाभी प्रत्यभिज्ञान होय नाहीं यह क्षणिक भी प्रत्यभिज्ञानहीका विषय है। जातैं पूर्व उत्तर पर्यायस्वरूप कालभेद न मानिये तौ बुद्धिके संचारका दोष आवै। कालभेदविना बुद्धिका संचार कैसे करिए। पूर्वदशाका स्मरण अर वर्तमानदशा का दर्शनरूप बुद्धिका संचारण पूर्वोत्तर पर्यायविषैं होय है। तबही प्रत्यभिज्ञान उपजे है। ऐसैं कथंचित् अनित्यत्व एकवस्तुविषैं सिद्ध होय है। तामैं विरोध आदि दूषण भी नाहीं हैं। दूषण आवै है सो सर्वथा एकान्त पक्षमें ही आवै है॥ ५६॥

आगैं, भगवान मानूं फेर पूछी कि जीव आदि वस्तुकें उत्पादविनाश रहित स्थितिमात्र तो कैसे स्वरूप करि है? अर विनाश, उत्पाद कैसे स्वरूपकरि हैं? बहुरि त्रयात्मक एक वस्तु कौन प्रकार सिद्ध होय है? ऐसैं पूछने पर मानूं आचार्य कहें हैं—

न सामान्यात्मनोदेति न व्येति व्यक्तमन्वयात्॥
व्येत्युदति विशेषात्ते सहैकत्रोदयादि सत्॥५७॥

अर्थ—वस्तु है सो सामान्यस्वरूपकरि तौ न उदेति कहिये उपजै नाहीं है—उत्पाद न होय। बहुरि 'न व्येति, कहिये विनशै नाही है जातैं व्यक्त कहिये प्रकट अन्वयस्वरूप है। बहुरि विशेषस्वरूपकरि विनशै भी है, उपजे भी है। बहुरि युगपत् एकवस्तुविषैं देखिये तब उपजै है, विनशै भी है अर स्थिर भी है ऐसैं तीन भावनिरूप सत् वस्तु है। तहां सामान्य स्वरूप तौ सर्व अवयामें साधारणस्वभाव है ताकूं अन्वयरूप द्रव्य कहिये है। बहुरि विशेष व्यतिरेकरूप पर्याय है। बहुरि यहां 'व्यक्त, ऐसा विशेषण है सो प्रकट प्रमाणकरि अबाधित

ता यह भी अयुक्त है। जातैं 'अवाच्य है, ऐसी उक्ति कहिये कहना सो भी न बनैं। ऐसैं कहैं भी अवक्तव्यपनेका एकान्त तो न रह्या ॥५५॥

ऐसैं नित्य आदि एकान्त ठहऱ्या तातैं सामर्थ्यवश अनेकान्तकी सिद्धि भई। तौऊ शून्यवादीके आशयकूं नष्टकरनेकूं तथा अनेकान्तके ज्ञानकी दृढताके अर्थ स्याद्वादन्यायका अनुसारकरि नित्यत्वादि अनेकान्तकूं आचार्य दिखावै हैं—

नित्यं तत्प्रत्यभिज्ञानान्नाकस्मात्तदविच्छिदा।
क्षणिकं कालभेदात्ते बुद्ध्यसंचरदोषतः ॥५६॥

अर्थ—हे भगवन्! ते, कहिये तुम जो हो अरहंत, स्याद्वादन्यायके नायक तिनकें सर्व जीव आदिक तत्त्व हैं सो स्यात् कहिये कथंचित् नित्य ही हैं जातैं प्रत्यभिज्ञायमान हैं। प्रत्यभिज्ञान प्रमाणतैं पूर्व, उत्तर दशा विषैं 'यह सो ही है जो पूर्वैं देख्या था, ऐसैं एकपना सिद्ध होय है सोही नित्य है। बहुरि यह प्रत्यभिज्ञान 'अकस्मात्, कहिये निर्विषय नाहीं। जातैं जाका अविच्छेदकरि अनुभव है। बहुरि क्षणिकवादी कहैं जो पूर्वोत्तरदशाविषैं सदृशभाव है ताकूं एकत्व मानना भ्रम है। ताके अर्थि कहिये हैं, जो पूर्वोत्तरकालकी दोऊ दशामें अन्य अन्य हैं ऐसा अनुभव काहू प्रमाणतैं सिद्ध होय नाहीं। तातैं एकत्व प्रत्यभिज्ञान ही सत्यार्थ सिद्ध होय है। बहुरि कहैं हैं जो यह प्रत्यभिज्ञान अकस्मात् नाहीं है जातैं बुद्धिके असंचारका दोष आवै है। जो या प्रत्यभिज्ञानका विषय नित्यपना न होय तो अविच्छेदरूप अनुभव न होय तब बुद्धिका संचार कैसें होय? निरन्वयविनाश होय तब एककूं छोडि दूसरे पै बुद्धि कैसें जाय। जो मैं पहले देख्या था सो ही मैं वर्तमान कालमें ताहीकूं देखूं हूं ऐसैं एक द्रव्य विना पूर्वोत्तर दशामें बुद्धिका संचार न होय। तातैं प्रत्यभिज्ञान निर्विषय नाहीं है। तातैं

ही है तैसैं कथंचित् अभेदरूप भी है ऐसैं उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यस्वरूप वस्तु सिद्ध होय है। इन तीनूं भावनिकैं परस्पर अपेक्षा न होय तो तीनूं ही अवस्तु ठहरैं तब वस्तु सिद्ध न होय केवल उत्पाद ही मानिये तो नवीन वस्तु उपज्या ठहरै सो बनै नाहीं। बहुरि केवल विनाश ही मानिये तो तिस हीका फेर उपजना न ठहरै तब शून्यका प्रसंग आवै। बहुरि केवल स्थिति मानिये तो उत्पाद, विनाश हैं ते ही न ठहरैं। ऐसैं प्रत्यक्षविरोध आवै। तातैं कथंचित् त्रयात्मक वस्तु मानना युक्त है॥ ५८॥

आगैं इस अर्थकी प्रतीतिके समर्थनकूं लौकिक जनकैं प्रसिद्ध दृष्टान्त कहैं हैं—

घटमौलिसुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वयम्।
शोकप्रमोदमाध्यस्थ्यं जनो याति सहेतुकम्॥ ५९॥

अर्थ—घट, मौलि, सुवर्ण इनके अर्थी जो पुरुष हैं सो घटकूं तोडि मौलि करनेमें शोक, प्रमोद, माध्यस्थ्यकूं प्राप्त होय हैं। सो यह सब हेतु सहित है। जो घटका अर्थी है ताकैं तो घटका विनाश होनेतैं शोक भया सो शोकका कारण घटका विनाश भया। बहुरि घटकूं तोडि मौलि (मुकुट) बनानेमें मौलिके अर्थी पुरुषकैं हर्ष भया सो यहां हर्षका कारण मौलिका उत्पाद भया। बहुरि जो सुवर्णका अर्थी है ताकैं शोक अर हर्ष न भया। मध्यस्थ रह्या। जातैं घट भी सुवर्ण था मौलि भी सुवर्ण ही है ऐसैं माध्यस्थ्यका कारण सुवर्णकी स्थिति भई। ऐसैं ...किक जनकैं उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य स्वरूप वस्तु है सो प्रतीतिभेदतैं ...॥ ५९॥

...र जैन व्रती हैं तिनकैं भी मति भेदतैं ऐसैं ही

-सामान्यविशेषरूप ऐसें ही सिद्ध होय है, ऐसें जनावै है। बहुरि युगपत् उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य तीनू क्या सो प्रमाणका विषय है सत्का लक्षण ऐसाही सिद्ध होय है ॥ ५७ ॥

आगैं अन्य वादी कहै हैं जो सतका लक्षण त्रयात्मक किया सो कै तो सत् नित्य ही बनै या उपजना, विनशनारूप अनित्य ही बनै। नित्यानित्यमैं तो विरोध है। तातैं जो उत्पाद अर व्ययरूप होय है सो पूर्वैं याका किछू सत् नाहीं है नवीन ही उपजै है ऐसैं कहना। जो नित्यतैं पूर्वैं होय ताका तो नाश कैसैं होय ? । अर पूर्वैं अनित्य ही था तो कार्य उपजा था विनशि गया ताके नवीन भये कार्यमैं सत् कैसैं कहिये ? । ऐसैं तर्क करै ताकूं आचार्य कहै हैं जो कार्यका उपजिनेकै पहलै तो भावस्वभाव ही है। सो जसैं है तैसै दिखावै हैं—

कार्योत्पादः क्षयो हेतुर्नियमाल्लक्षणात्पृथक्।
न तौ जात्याद्यवस्थानादनपेक्षाः खपुष्पवत् ॥ ५८ ॥

अर्थ—हेतु कहिये उपादान कारण ताका क्षय कहिये विनाश है सो ही कार्यका उत्पाद है। जातैं हेतुकै नियमतै कार्यका उपजना है। जो कार्यतैं सर्वथा अन्य है तातैं नियम नाहीं है। बहुरि ते उत्पाद, विनाश भिन्नलक्षणतैं न्यारे न्यारे हैं—कथंचित् भेदरूप हैं। बहुरि जाति आदिक अवस्थानतैं भिन्न नाहीं हैं—कथंचित् अभेदरूप हैं। बहुरि परस्पर अपेक्षा रहित होय तो अवस्तु है—आकाशके फूलतुल्य है। यहां, जैसें कपालका उत्पाद अर घटका विनाशकै हेतुका नियम है। तातैं हेतुके नियमतैं कार्यका उत्पाद है सो ही पूर्व आकारका विनाश है। अर दोऊ लक्षणभेद है ही। उत्पादका स्वरूप अन्य अर विनाशका स्वरूप अन्य ऐसैं लक्षणभेदतैं भेद है ही। बहुरि सर्वथा भेद ही नाहीं है। जैसैं कपालका उत्पाद अर घटका विनाश ये दोऊ मृतिकास्वरूप

अथ चतुर्थ-परिच्छेद ।



दोहा ।

भेदआदि एकान्त तम, दूरि कियो जिनसूर ॥
वचन किरणतैं तास पद, नमूं करम निरसूर ॥ १ ॥

अब यहां वैशेषिकमती भेद एकान्त पक्षकरि अपना मत थापै। ताका पूर्व पक्ष ऐसैं है—

कार्यकारणनानात्वं गुणगुण्यन्यतापि च ।
सामान्यतद्वन्यत्वं चैकान्तेन यदीष्यते ॥ ६१ ॥

अर्थ—कार्यकै अर कारणकै नानापना, बहुरि गुणकै अर गुणीकै अन्यता कहिये भेदरूप नानापना, बहुरि सामान्यकै अर 'तद्वत्' कहिये विशेषनिकै अन्यपना है ऐसैं जो एकान्तकरि मानिये । ऐसा वैशेषिकमती पूर्वपक्ष करै ताका उत्तर अगली कारिकामैं होगा ।

यहां कार्यके ग्रहणतैं तो कर्मका तथा अवयवीका अर अनित्यगुण तथा प्रध्वसाभावका ग्रहण है । बहुरि कारणके कहनेतैं, समवायी समवाय तथा प्रध्वसके निमित्तका ग्रहण है। बहुरि गुणतैं नित्यगुणका ग्रहण है अर-गुणी कहने तैं गुणके आश्रयरूप द्रव्यका ग्रहण है । बहुरि सामान्यके ग्रहणतैं पर, अपर जाति रूप समान परिणामका ग्रहण है । तथैव, तद्वत्, वचनतैं अर्थरूप विशेषनिका ग्रहण है । ऐसैं वैशेषिकमती मानै है जो इन सबकै भेद ही है, ये नाना ही हैं, अभेद नाहीं हैं । ऐसा एकान्तकरि मानै है, ताकूं आचार्य कहैं हैं कि ऐसैं माननेतैं दूषण आवै है ॥६१

पयोव्रतो न दध्यत्ति न पयोऽत्ति दधिव्रतः ।
अगोरसव्रतो नोभे तस्मात्तत्त्वं त्रयात्मकम् ॥ ६० ॥

अर्थ—जाकैं ऐसा व्रत होय कि मैं आज दुग्ध ही ल्यूंगा सो तो दही नाहीं खाय है । बहुरि जाकैं ऐसा व्रत होय कि मैं आज दही ही खाऊंगा सो वो दूध नाहीं पीवे है । बहुरि जा पुरुषकैं गोरस न लेनेका व्रत है सो दोऊ ही नाहीं ले है । तातैं तत्त्व है सो त्रयात्मक है ॥

भावार्थ—गोरस एसा दूध अर दही इन दोऊ ही कूं कहिये है । सो वस्तु विचारिये तब दोनोंमें अभेद भी है जातैं दोऊ एक गोरसत्व रूप ही हैं । बहुरि भेद भी है । तातैं व्रती जन हैं ते ऐसैं मानैं हैं जो दूध खानेकी प्रतिज्ञा ले तब दही यद्यपि गोरस ही है तो भी तातैं भेद मानि न खाय है । तैसैं ही दही खानेकी प्रतिज्ञा ले तब दूधकूं भेद मानि न खाय है । बहुरि जो दोऊके न खाने की प्रतिज्ञा ले सो दोऊ ही न खाय । ऐसैं व्रती भी भेदाभेदरूप वस्तु मानें हैं । तातैं ऐसैं ही त्रयात्मक वस्तु प्रतीतिसिद्ध है । तातैं कथंचित् नित्य ही है, कथंचित् अनित्य ही है । ऐसैं ही कथंचित् नित्यानित्य ही है, कथंचित् अवक्तव्य ही है कथंचित् नित्य अवक्तव्य ही है । कथंचित् अनित्य अवक्तव्य ही है तथा कथंचित् नित्यानित्य अवक्तव्य ही है । ऐसैं यथायोग्य सप्तभंगि जोड़नी । जैसैं सत् आदिपर जोड़ी थी तैसैं ही नय लगावनी ॥ ६० ॥

चौपाई ।

नित्य आदि एकान्त गहाय, प्राणी भवमें भ्रमण कराय ।
तिनके उधरनकूं जिनवैन, अनेकान्तमय वरनें ऐन ॥ १ ॥

इति श्री स्वामी समन्तभद्र विरचित आप्त मीमांसा नाम देवागम-स्तोत्रकी देशभाषामय वचनिकाविषैं स्याद्वादस्थापनरूप तृतीय अधिकार समाप्त भया ।

अर्थ—अवयवी जे कार्य द्रव्यादिक तिनकै अवयव जे कारणादिक तिनतैं सर्वथा भेद मानिये तो देश कालका विशेष होतैं भी वृत्ति ठहरै । जैसैं दोय द्रव्य जुदे युतसिद्धकै वृत्ति होय तैसैं ठहरै । पर्वतकै अर वृक्षादिककै भेदरूप वृत्ति है तैसें ठहरै सो एमैं है नाहीं । अवयवी आदिकै अर अवयव आदिकै तो कथंचित् भेद है । बहुरि मूर्तिक जे कारण, कार्य तिनकै समानदेशता करिये एकदेशपना, मानैं तो ये भी न ठहरै अत्यन्तभिन्न अनेक मूर्तिक पदार्थकै एकदेशमें रहना कैसें बनैं । ऐसें सर्वथा भेदपक्षमें दूषण आवै है ॥ ६३ ॥

आगें फेर प्रश्नोत्तर करें हैं—

आश्रयाश्रयिभावान्न स्वातंत्र्य समवायिनाम् ।
इत्ययुक्तः स सम्बंधो न युक्तः समवायिभि ॥ ६४ ॥

अर्थ— वैशेषिक कहै है कि समवायी पदार्थ है तिनकै आश्रय आश्रयी भाव है यातैं स्वाधीनपना नाहीं है तातैं कार्य कारणादिक कैं देशकालादिकका भेद करि वृत्ति नाहीं है । समवायी पदार्थ तो समवायके आधीन वरते है । आप ही देश कालके भेद करि वृत्ति कैसें करे ? । ताकू आचार्य कहै हैं ।

कि हे वैशेषिक ! समवाया पदार्थनि करि समवाय सम्बन्ध भी तो भिन्नही है जुड्या नाहीं है सो युक्त नाही होय है । समवाय पदार्थ जुदा था ताकू जुदे समवायी पदार्थनि तैं कौन नें जोड्या (मिलाया)। ऐसें सर्वथा भेद मानें तैं दूषणही आवै है ॥ ६४ ॥

आगैं, वैशेषिक कहै कि केवल समवाय तो सत्तासामान्यके समान नित्य ही है । अर कार्य उपजै है तब सत्ता समवायी मानिये है ऐसें समवायकै अर कार्यकै जोड है ताकू आचार्य दूषण दिखावै हैं—

अर्थ—अवयवी जे कार्य द्रव्यादिक तिनकैं अवयव जे कारणादिक तिनतैं सर्वथा भेद मानिये तो देश कालका विशेष होतैं भी वृत्ति ठहरै। जैसैं दोय द्रव्य जुडें युतसिद्धकैं वृत्ति होय तैसें ठहरैं। पर्वतकैं अर वृक्षादिककैं भेदरूप वृत्ति है तैसें ठहरै सो ऐसैं है नाहीं। अवयवी आदिकैं अर अवयव आदिकैं तो कथंचित् भेद है। बहुरि मूर्तिक जे कारण, कार्य तिनकैं समानदेशता कहिये एकदेशपना, मानैं तो ये भी न ठहरै अत्यन्तभिन्न अनेक मूर्तिक पदार्थके एकदेशमें रहना कैसें बनैं। ऐसें सर्वथा भेदपक्षमें दूषण आवै है ॥ ६३ ॥

आगें फेर प्रश्नोत्तर करैं हैं—

आश्रयाश्रयिभावान्न स्वातन्त्र्यं समवायिनाम्।
इत्ययुक्तः स संबंधो न युक्तः समवायिभिः ॥ ६४ ॥

अर्थ— वैशेषिक कहै है कि समवायी पदार्थ है तिनकैं आश्रय आश्रयी भाव है यातैं स्वाधीनपना नाहीं है तातैं कार्य कारणादिक कै देशकालादिकका भेद करि वृत्ति नाहीं है। समवायी पदार्थ तो समवायके आधीन वरते है। आप ही देश कालके भेद करि वृत्ति कैसें करै ? । ताकूं आचार्य कहैं हैं।

कि हे वैशेषिक ! समवायी पदार्थनि करि समवाय सबंध भी तो भिन्नही है जुड्या नाहीं है सो युक्त नाहीं होय है। समवाय पदार्थ जुदा था ताकूं जुदे समवायी पदार्थनि तैं कोन नें जोड्या (मिलाया)। ऐसें सर्वथा भेद मानें तैं दूषणहीं आवै है ॥ ६४ ॥

आगैं, वैशेषिक कहै कि केवल समवाय तो सत्तासामान्यके समान नित्य ही है। अर कार्य उपजै है तब सत्ता समवायी मानिये है ऐसें समवायकें अर कार्यकें जोड़ है ताकूं आचार्य दूषण दिखावें हैं—

अर्थ—अवयवी जे कार्य द्रव्यादिक तिनकैं अवयव जे कारणादिक तिनतैं सर्वथा भेद मानिये तो देश कालका विशेष होतैं भी वृत्ति ठहरे। जैसैं दोय द्रव्य जुदे युतसिद्धकैं वृत्ति होय तैंमें ठहरैं। पर्वतकै अर वृक्षादिककै भेदरूप वृत्ति है तैसें ठहरैं सो एसैं है नाहीं। अवयवी आदिकैं अर अवयव आदिकै तो कथंचित् भेद है। बहुरि मूर्तिक जे कारण, कार्य तिनकैं समानदेशता कहिये एकदेशपना, मानैं तो ये भी न ठहरै अत्यन्तभिन्न अनेक मूर्तिक पदार्थकैं एकदेशमें रहना कैसें बनैं। ऐसें सर्वथा भेदपक्षमें दूषण आवै है ॥ ६३ ॥

आगें फेर प्रश्नोत्तर करैं है—

आश्रयाश्रयिभावान्न स्वातन्त्र्यं समवायिनाम् ।
इत्ययुक्त. स सम्बन्धो न युक्त. समवायिभि ॥ ६४ ॥

अर्थ— वैशेषिक कहै है कि समवायी पदार्थ हैं तिनकैं आश्रय आश्रयी भाव है यातैं स्वाधीनपना नाहीं है तातैं कार्य कारणादिक कैं देशकालादिकका भेद करि वृत्ति नाहीं है। समवायी पदार्थ तो समवायके आधीन वरते है। आप ही देश कालके भेद करि वृत्ति कैसें करै ?। ताकूं आचार्य कहैं हैं।

कि हे वैशेषिक ! समवायी पदार्थनि करि समवाय सम्बन्ध भी तो भिन्नही है जुड्या नाहीं है सो युक्त नाहीं होय है। समवाय पदार्थ जुदा था ताकूं जुदे समवायी पदार्थनि तैं कौन नें जोड्या (मिलाया)। ऐसें सर्वथा भेद मानें तैं दूषणही आवै है ॥ ६४ ॥

आगैं, वैशेषिक कहै कि केवल समवाय तो सत्तासामान्यके समान नित्य ही है। अर कार्य उपजे है तब सत्ता समवायी मानिये है ऐसें समवायकैं अर कार्यकै जोड़ है ताकूं आचार्य दूषण दिखावैं हैं—

समान्य समवायश्चाप्येकैकत्र समाप्तित ।
अंतरेणाश्रय न स्यान्नाशोत्पादिषु को विधि. ॥ ६५ ॥

अर्थ—सामान्य अर समवाय ये दोऊ नित्य हैं अर एक एक हैं। ते दोऊ यदि एक एक पदार्थनिविषैं समस्तपनेकरि वर्तै तदि एक एक नित्यपदार्थनिविषै ही समाप्त होंय तब अन्य पदार्थमें कौन जाय अर इन दोऊनकैं अंश, अवयव मान्या नाहीं। तब अनित्य जे उपजन विनशने वाले कार्य आदि पदार्थ हैं ते सामान्य अर समवाय विना ठहरे। तब सामान्य अर समवाय ये दोऊ ही आश्रय विना न होंय तब उपजने, विनशनेवाले पदार्थनिकी कौन विधि मानिये इनका सत्व अर प्रवर्तना न ठहरे। ऐसें दोष आवै ॥ ६५ ॥

आगें कहैं हैं कि वैशेषिककै परस्पर सापेक्षा न मानने तै भेदएकांतमें पहले कहे ते, अर अब कहैं हैं सो दूषन आवे हैं—

सर्वथानभिसंबन्ध सामान्यसमवाययो ।
ताभ्यामर्थो न संबधस्तानि त्रीणि खपुष्पवत् ॥ ६६ ॥

अर्थ—सामान्यकै अर समवायकै वैशेषिकनैं सर्वथा संबंध नाहीं मान्या है। बहुरि तिन दोऊनितैं भिन्न पदार्थ द्रव्य गुण, कर्म ये संबंधरूप नाहीं होय है जातैं परस्पर अपेक्षा रहित सर्वथाभेद मान्या है। तातैं ऐसा ठहरे है कि परस्पर अपेक्षा विना सामान्य, समवाय अर अन्य पदार्थ ये तीनूंहू आकाशके फूलकी तरह अवस्तु हैं। वैशेषिकनैं कल्पनामात्र वचनजाल किया है। ऐसें कार्य कारण, गुण गुणी, सामान्य विशेष इनकैं अन्यपनेका एकांत भेदएकांतकी तरह श्रेष्ठ नाहीं ॥ ६६ ॥

आगें अन्यवादी कहै । [illegible] तुम कह्या तैसें अन्यता तथा अनर्थ [illegible] तो

नित्यपना है तातैं सर्व अवस्थानिविषैं अन्यपनाका अभाव है तातैं अनन्यताका एकान्त है सो सदा एकस्वरूप रहै है अन्यस्वरूप कबहू न होय। ताकू आचार्य कहैं हैं—

अनन्यतैकान्तेऽणूनां संघातेऽपि विभागवत्।
असंहतत्वं स्याद् भूतचतुष्कं भ्रान्तिरेव सा॥ ६७॥

अर्थ—परमाणूनिकैं अनन्यता कहिये अन्यस्वरूप न होनेका एकान्त, होनेतैं संघात कहिये परस्पर मिलि एकान्त होतैं भी विभाग कहिये पहलें न्यारे न्यारे विभागरूप थे ताकी तरह मिले नाहीं ठहरें, जातैं मिल स्कंध स्वरूप न भये। जो मिलकरि स्कंधरूप भये मानिये तो अनन्यताका एकान्त न ठहरे कथंचित् अन्यस्वरूप भये ठहरे। बहुरि स्कंधरूप न भये ठहरे। बहुरि स्कंधरूप न भये तब पृथ्वी, जल, तेज, वायु ऐसा भूतका चतुष्टय देखिये है सो भ्रांतिरूप ठहरे। जातैं भूतचतुष्क परमाणूनिका कार्य मानिये है सो भ्रम ठहरै॥ ६७॥

आगें, भूतचतुष्ककूं भ्रान्ति मानें दोष आवै है सो दिखावैं हैं—

कार्यभ्रान्तेरणुभ्रान्तिः कार्यलिङ्गं हि कारणम्।
उभयाभावतस्तत्स्थं गुणजातीतरच्च न॥ ६८॥

अर्थ—परमाणूनिके कार्य जो पृथ्वी आदि भूतचतुष्क तिनकूं भ्रमस्वरूप मानें तैं परमाणु भी भ्रमस्वरूप ही ठहरैं हैं। जातैं कारण है सो कार्यलिंगस्वरूप है अर कार्यलिङ्गतैं ही कारणका अनुमान करिये हैं। कार्य भ्रम ठहरै तब ताका कारण भी भ्रमही ठहरे। बहुरि कार्य कारणस्वरूप जो भूतचतुष्क अर परमाणु इन दोऊनके अभावतैं तिनकै विषैं तिष्ठते गुण, जाति, सत्व, क्रिया, विशेष, समवाय ये भी न ठहरैं। तातैं परमाणूनिकैं कथंचित् स्कंधरूप अन्यस्वरूपता मानना युक्त है।

समान्य समवायश्चाप्येकैकत्र समाप्तित ।
अंतरेणाश्रय न स्यान्नाशोत्पादिषु को विधि ॥ ६५ ॥

अर्थ—सामान्य अर समवाय ये दोऊ नित्य है अर एक एक हैं। ते दोऊ यदि एक एक पदार्थनिविर्षे समस्तपनेकरि वर्तै तदि एक एक नित्यपदार्थविर्षे ही समाप्त होंय तब अन्य पदार्थमें कौन जाय अर इन दोऊनकैं अंश, अवयव मान्या नाहीं। तब अनित्य जे उपजने विनशने वाले कार्य आदि पदार्थ हैं ते सामान्य अर समवाय विना ठहरे। तब सामान्य अर समवाय य दोऊ ही आश्रय विना न होंय तब उपजने, विनशनेवाले पदार्थनिकी कौन विधि मानिये इनका सत्व अर प्रवर्तना न ठहरै। ऐसें दोष आवै ॥ ६५ ॥

आगें कहै हैं कि वैशेषिककै परस्पर सापेक्षा न मानने तैं भेदएकान्तमें पहले कहे ते, अर अब कहै हैं सो दूषन आवै है—

सर्वथानभिसम्बन्ध सामान्यसमवाययो ।
ताभ्यामर्थो न सम्बद्धस्तानि त्रीणि खपुष्पवत् ॥ ६६ ॥

अर्थ—सामान्यकै अर समवायकै वैशेषिकनैं सर्वथा संबंध नाहीं माना है। बहुरि तिन दोऊनितैं भिन्न पदार्थ द्रव्य गुण, कर्म संबन्धरूप नाहीं होय है जातैं परस्पर अपेक्षा रहित सर्वथाभेद मान्या है। तातैं ऐसा ठहर है कि परस्पर अपेक्षा विना सामान्य, समवाय अर अन्य पदार्थ ये तीनूही आकाशके फूलका तरह अवस्तु हैं। वैशेषिकनि कल्पनामात्र वचनजाल किया है। ऐसें कार्य कारण, गुण गुणी, सामान्य विशेष इनकैं अन्यपनेका एकान्त भेदएकान्तकी तरह श्रेष्ठ नाहीं॥ ६६

आगें अन्यवादी कहै है कि कार्यकारण आदिकैं तो तुम कह्या तैं अन्यता तथा अनन्यताका एकान्त मत होहु। बहुरि परमाणूनिकैं

नित्यपना है तातैं सर्व अवस्थानिवैं अन्यपनाका अभाव है तातैं अनन्यताका एकान्त है सो सदा एकस्वरूप रहै है अन्यस्वरूप कबहू न होय। ताकूं आचार्य कहैं हैं—

अनन्यतैकान्तेऽणूनां संघातेऽपि विभागवत्।
असंहतत्वं स्याद् भूतचतुष्कं भ्रान्तिरेव सा॥ ६७॥

अर्थ—परमाणूनिकैं अनन्यता कहिये अन्यस्वरूप न होनेका एकान्त, होनेतें संघात कहिये परस्पर मिल एकान्त होतैं भी विभाग कहिये पहलें न्यारे न्यारे विभागरूप थे ताकी तरह मिले नाहीं ठहरें, जातैं मिल स्कंध स्वरूप न भये। जो मिलकरि स्कंधरूप भये मानिये तो अनन्यताका एकान्त न ठहरै कथंचित् अन्यस्वरूप भये ठहरें। बहुरि स्कंधरूप न भये ठहरे। बहुरि स्कंधरूप न भये तब पृथ्वी, जल, तेज, वायु ऐसा भूतका चतुष्टय देखिये है सो भ्रान्तिरूप ठहरै। जातैं भूतचतुष्क परमाणूनिका कार्य मानिये है सो भ्रम ठहरै॥ ६७॥

आगें, भूतचतुष्ककूं भ्रान्ति मानें दोष आवै है सो दिखावैं हैं—

कार्यभ्रान्तेरणुभ्रान्तिः कार्यलिङ्गं हि कारणम्।
उभयाभावतस्तत्स्थं गुणजातीतरच्च न॥ ६८॥

अर्थ—परमाणूनिके कार्य जो पृथ्वी आदि भूतचतुष्क तिनकूं भ्रमस्वरूप मानें तै परमाणु भी भ्रमस्वरूप ही ठहरैं हैं। जातैं कारण है सो कार्यलिंगस्वरूप है अर कार्यलिङ्गतैं ही कारणका अनुमान करिये हैं। कार्य भ्रम ठहरै तब ताका कारण भी भ्रमही ठहरै। बहुरि कार्य कारणस्वरूप जो भूतचतुष्क अर परमाणु इन दोऊनके अभावतैं तिनकैं विषैं तिष्ठते गुण, जाति, सत्व, क्रिया, विशेष, समवाय ये भी न ठहरैं। तातैं परमाणूनिकैं कथंचित् स्कंधरूप अन्यस्वरूपता मानना युक्त है।

जैसें बौद्धमतीनिकें परमाणुनिका अन्यस्वरूप न मानना अयुक्त है। तैसें वैशेषिकनिका भी मत सिद्ध न होय है ॥ ६८ ॥

आगें सांख्यमती कार्यकारणकूं एकस्वरूप ही मानै कथाचित् अन्यस्वरूप न मानै तामें दूषण दिखावे हैं—

> एकत्वेऽन्यतराभावः शेषाभावोऽविनाभुवः ।
> द्वित्वसंख्याविरोधश्च संवृतिश्चेन्मृषैव सा ॥ ६९ ॥

अर्थ—कार्य जो महान् आदि अर कारण जो प्रधान, तामें परस्पर एकस्वरूप तादात्म्य मानते जब तादात्म्य एकस्वरूप भया तब एकका अभाव भया, एक रह्या। बहुरि एक रह्या सो दूसरें तैं अविनाभावि है तातैं दूसरेका अभाव होतैं शेष एक रह्या था ताका भी अभाव भया ऐसैं दोऊ ही न ठहरें हैं। बहुरि दोयपनकी संख्या मानिये है ताका विरोध आवे है यह संख्या भी न ठहरे। बहुरि यदि कहै कि द्वित्वकी संख्या तो संवृति है, कल्पना है, उपचार है। तौ कल्पना उपचार है सो मृषाही है असत्य ही है ताकी कहा (क्या) चर्चा ?। ऐसे प्रधान, महान, आदि सांख्यकल्पितकें अनन्यता का एकान्त माननेतैं दूषण आवे है। तथा पुरुष अर चैतन्य, इनकें भी अनन्यताका एकान्त माननेतैं दोऊका अभाव अर द्वित्व संख्यका विरोध आवे है। ऐसें कार्यकारणादिकके अनन्यताका एकान्त नाहीं संभवै है ॥ ६९ ॥

आगैं, अन्यता अर अनन्यता इन दोऊ पक्षका एकान्त मानन तैं तथा अवक्तव्य एकान्त मानने तैं दूषण दिखावें हैं —

> विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।
> अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥ ७० ॥

अर्थ—स्याद्वादन्यायके विद्वेषीनिकैं अन्यता अर अनन्यता दोऊकैं एकस्वरूपपना न सभवै है। अवयव अवयवी, गुण गुणी, सामान्य विशेष आदिकके भेद अर अभेद इन दोऊनका एकस्वरूपपना न बनै है जातैं भेद, अभेदमें परस्पर विरोध है। बहुरि अवाच्यताका एकान्त भी नाहीं बनै जातैं जा एकान्तमें 'अवाच्य है,' ऐसी उक्ति भी युक्त न होय है ॥ ७० ॥

आगैं, ऐसैं अवयव अवयवी आदिका अन्यत्व आदि एकान्त जो भेदाभेद एकान्त, ताकूं निराकरण करि अब तिनकैं अनेकान्त सामर्थ्य-करि सिद्ध भया तोऊ कुवादी की आशंका दूरकरनेकूं तथा दृष्टि निश्चयकरनेक इच्छुक आचार्य अनेकान्तकूं कहैं हैं—

द्रव्यपर्याययोरैक्य तयोरव्यतिरेकतः।
परिणामविशेषाच्च शक्तिमच्छक्तिभावतः ॥ ७१ ॥
सज्ञासख्याविशेषाच्च स्वलक्षणविशेषतः।
प्रयोजनादिभेदाच्च तन्नानात्व न सर्वथा ॥७२ ॥

अर्थ—द्रव्य अर पर्याय, इनकै कथंचित् एकपना है जातैं दोऊनकैं अव्यतिरेक है, सर्वथा भिन्नपना नाहीं है। बहुरि तिन द्रव्य पर्यायनिकैं कथंचित् नानापना है जातैं इनकै परिणामका विशेष है, बहुरि शक्ति अर शक्तिमानपना है, बहुरि संज्ञा का विशेष है, बहुरि संख्याका विशेष है, बहुरि स्वलक्षणका विशेष है, अर प्रयोजनका भेद है। ऐसैं छह हेतुतैं नानापना है। बहुरि आदि शब्दतैं भिन्न प्रतिभास लेना, अर भिन्नकाल लेना। ऐसैं कथंचित् भेदाभेदपना है। सर्वथा नाहीं है।

यहां द्रव्य शब्दतैं तो गुणी, सामान्य, उपादानकारण इनका ग्रहण है। बहुरि पर्याय शब्दतैं गुण, व्यक्ति, कार्य इनका ग्रहण है। बहुरि अव्यतिरेक शब्दतैं अशक्यविवेचनपनेका ग्रहण है याका यह हू अर्थ

है कि नियमित द्रव्य पर्यायनिकैं अन्यद्रव्यमैं प्राप्तकरनेके असमर्थपनातैं
अशक्यविवेचन कह्या, अन्यद्रव्यके गुण पर्याय अन्यद्रव्यमें न आय,
यह अर्थ है। बहुरि द्रव्य पर्यायनि कैं कथंचित् एकता कहनेमैं विरोध,
वैयधिकरण, संशय, व्यतिकर, शङ्कर, अनवस्था, अप्रतिपत्ति, अभाव
ये दूषण नहीं आवैं हैं। जातैं जैसैं एकता कही तैसैं प्रतीतिमें आवै
है, कल्पनाकरि वचनमात्र नाहीं कहै है। अर जो प्रतीतिसिद्ध होय
तामैं दूषण काहेका? बहुरि जहां नानापना कह्या तहां परिणामके
विशेष हैं, द्रव्यका तो अनादि अनन्त एकस्वभाव स्वभाविक परिणाम
है। बहुरि पर्यायका सादि, सान्त अनेक नैमित्तिक परिणाम हैं। ऐसैं
ही शक्तिमान शक्तिभाव जानना। बहुरि द्रव्य नाम है पर्यायनाम
ऐसा सज्ञाका विशेष है। बहुरि द्रव्य एक है पर्याय बहुत हैं ऐसैं
संख्याका विशेष है। बहुरि द्रव्यतैं तो एकपना, अन्वयपना ऐसैं ज्ञान
आदि कार्य होय हैं। बहुरि पर्यायतैं अनेकपना, जुदापना आदिरूप
ज्ञानरूप कार्य होना यह प्रयोजनका विशेष है। बहुरि द्रव्य त्रिकाल
गोचर है पर्याय वर्तमानकालगोचर है ऐसैं कालभेद है। बहुरि भिन्न
प्रतिभास है ही, सो पूर्वोक्तविशेषनितैं ही जान्या जाय है। बहुरि
लक्षणभेद भी तैसैं ही जानना। द्रव्यका लक्षण गुणपर्यायवान है
पर्यायका तद्भाव परिणाम ऐसा लक्षण है ऐसैं भेदाभेद एकान्त निरा-
करण करि अनेकान्तका स्थापन किया। तहां वस्तु स्वलक्षणके भेद
नाना ही है। कथंचित् अशक्यविवेचनपनातैं एकरूप ही है। कथं-
चित् दोऊ भाव हैं। क्रमरूप कहने तैं कथंचित् दोऊ रूप युगपत्
कह्या जाय तातैं अवक्तव्य ही है कथंचित् नानात्व अवक्तव्य ही
जातैं परस्पर विरुद्धरूप है अर युगपत् न कह्या जाय है। बहुरि कथं-
एकत्व अवक्तव्य ही है जातैं अशक्यविवेचन स्वरूप है अर युग-

पत् दोऊरूप है सो कह्या न जाय है। बहुरि कथंचित् दोऊ रूप है अर युगपत् न कह्या जाय है तातैं उभय अवक्तव्य है। ऐसैं सप्तभंगी प्रक्रिया प्रत्यक्ष, अनुमानतैं अविरुद्ध जाननी ॥ ७१ । ७२ ॥

चौपाई।

नानापना एकता भाय, पक्षपाततैं मिथ्या थाय।
अनेकान्त साधैं सुखदाय, ज्ञात यथा कीया जिनराय ॥ १ ॥

इति श्री स्वामी समन्तभद्र विरचित आप्त मीमांसा नाम देवागम-स्तोत्रकी देशभाषा वचनिकाविषैं सर्वथा नानपना माननेवाले एकान्तके पक्षपातीको संबोधनरूप-चतुर्थ परिच्छेद समाप्त

अथ पचम परिच्छेद ।



दोहा ।

एक वस्तुमें धर्म दो, साधे श्री गणधार ।
सुअपेक्षा अनपेक्ष ते, नमों तास पद सार ॥ १ ॥

अब यहा प्रथम ही अपेक्षा अनपेक्षा के एकात पक्षनिमें दूषण दिखावैं हैं—

यद्यापेक्षिकसिद्धिः स्यान्न द्वयं व्यवतिष्ठते ।
अनापेक्षिकसिद्धौ च न सामान्यविशेषता ॥ ७३ ॥

अर्थ—जो धर्म धर्मी आदि के एकांत करि आपाक्षक सिद्धि मानिए, तो धर्म धर्मी दोऊ हीन ठहरे । बहुरि अपेक्षा विना एकात करि सिद्धि मानिए तो सामान्य विशेषपणा न ठहरे। तहा बौद्धमती ऐसैं मानैं हैं । प्रत्यक्ष बुद्धि में धर्म अथवा धर्मी न प्रति भासै है। प्रत्यक्ष देखें पीछें विकल्प बुद्धि होय। तिस तैं धर्म धर्मी कल्पिये है । ऐसैं कल्पना मात्र है जाकों धर्म कल्पिये सो ही धर्मी हो जाय धर्मी धर्म हो जाय। ऐसैं कहूँ ठहरै नाहीं, जैसैं शब्द अपेक्षा सत्त्व आदि कूं धर्म कल्पिये सो ही ज्ञेयपणा की अपेक्षा धर्मी हो जाय । ऐसैं विशेष्य विशेषण पणा गुण गुणी पणा क्रिया क्रियावान पणा कार्य कारण पणा साध्य साधन पणा ग्राह्य ग्राहक पणा इत्यादि परस्पर अपेक्षा मात्र ही तैं सिद्ध है । ऐसैं बौद्ध मती की ज्यौं एकान्त करि मानिए तो दोऊ न ठहरैं, तातैं अपेक्षा मात्र सिद्धि का एकात सिद्ध नाहीं, श्रेष्ट नाहीं ॥ बहुरि धर्म धर्मी कौं सर्वथा अपेक्षा विना ही सिद्धि नैयायिक मानै है । कहै है—धर्म धर्मी भिन्न ज्ञान के विषय हैं । इनके परस्पर अपेक्षा नाहीं ऐसैं एकान्त करि

मानैं है। ताकै भी अन्वय व्यतिरेक न ठहरै जातैं भेद अभेद है। ते परस्पर अपेक्षा बिना सिद्धि न होय। अन्वय तो सामान्य है अर व्यतिरेक विशेष है, ते परस्पर अपेक्षा स्वरूप हैं। तिन दोऊ के परस्पर अपेक्षा न मानिये तो सामान्य विशेष भाव न ठहरै तातैं अपेक्षा अनपेक्षा ये दोऊ ही एकान्त तैं बनै नाहीं एकान्त तैं वस्तु की व्यवस्था नहीं हैं ॥ ७३ ॥

आगें दोऊ मानि एकान्त माने तथा अवक्तव्य एकान्त मानै, तामें दूषण दिखावैं हैं

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषां।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥ ७४ ॥

अर्थ—अपेक्षा अनपेक्षा दोऊका एकान्त मानै तौ दोऊ एक स्वरूप होय नाहीं जातै स्याद्वाद न्यायके विद्वेषीनकै विरोध नामा दूषण आवै है। जैसे सत् असत् एकान्त में आवे तसैं तातै ये भी एकान्त श्रेष्ठ नाहीं है। बहुरि अवाच्यताका एकान्त करै तो अवाच्य है। ऐसें कहना ही न बणैं तातैं अवक्तव्य एकान्त भी श्रेष्ठ नाहीं॥ ७४ ॥

आगें अपेक्षा अनपेक्षाका एकान्तके निराकरणकी सामर्थ्यतैं अनेकान्त सिद्ध भया तौऊ कुवादी की आशंका दूर करणेंकू अनेकान्तकू आचार्य्य कहै हैं ॥

धर्म्मधर्म्यविनाभावसिध्यत्यन्योन्यवीक्षया,
न स्वरूपं स्वतो ह्येतत् कारकज्ञापकाङ्गवत् ॥ ७५ ॥

अर्थ—धर्म्म अर धर्म्मी के अविना भाव है, सो तौ परस्पर अपेक्षा करि सिद्ध है। धर्म्म बिना धर्म्मी नाहीं। बहुरि धर्म्म, धर्म्मी का स्वरूप है। सो परस्पर अपेक्षा करि सिद्ध नाही है। स्वरूप है सो स्वतः सिद्ध है। आपही पहलैं ही स्वयमेव सिद्ध है जैसे कारक के

अग कर्ता कर्म आदि हैं तहा ज्ञायक के अग ज्ञेय ज्ञायक है तैसे कर्त्ता बिना कर्म नाहीं अर कर्म बिना कर्त्ता नाहीं । ऐसें अपेक्षा सिद्ध है । बहुरि कर्त्ता का करनेरूपपणा स्वरूप है सा पहलैं आपे आप सिद्ध है ही तैसे ही कर्म आपे आप सिद्ध है स्वरूप मैं अपेक्षा सिद्ध पणा है नाहीं ऐसें ही सामन्य विशेष गुण गुणी कार्य कारण प्रमाण प्रमेय इत्यादि जानना । कथंचित् आपक्षक सिद्ध है कथंचित् अनापक्षक सिद्ध है कथंचित् दोऊ करि सिद्ध है कथचित् अवक्तव्य है कथचित् आपक्षिक अवक्तव्य है कथंचित् अनापक्षिक अवक्तव्य है कथंचित् दोऊ हैं अर अवक्तव्य है । दोऊ के अविनाभाव अर निज स्वरूप हेतु लगावणा । ऐसें सप्तभंगी प्रक्रिया पूर्वोक्त प्रकार लगावणी ॥ ७५ ॥

चौपाई ।

आपेक्षिक आदिक एकांत । मिथ्या विपरज् कयो सिद्धांत
जैन मुनिनके वचन जु मत्र, सुने जहर उतरै वह तत्र ॥१॥

इति श्री स्वामी समंत भद्र विरचित आप्तमीमांसा नाम देवागम स्तोत्र की संक्षेप अर्थ रूप देश भाषा मय वचनिका विषैं पाचवा परिच्छेद समाप्त भया ॥ ५ ॥

यहा ताई कारिका पिचेहत्तर भई । आगें छठा परिच्छेद का प्रारभ

दोहा ।

हेतु अहतु विचारिकैं पक्षपात परिहार ।
आगम बरतायो मुनींनमौंशीश करधार. ॥ १ ॥

अब यहा प्रथम हेतु अर आगम का एकांतपक्षविषैं दूषणभी दिखावैं हैं ।

सिद्धि चेद्धेतुत सर्वं न प्रत्यक्षादितो गति ।
सिद्ध चेदागमात्सर्वं विरुद्धार्थमतान्यपि ॥ ७६ ॥

अर्थ—जो अपना वाछित कार्य सर्व एकात करि हेतु तैं ही सिद्ध होना मानिये तो प्रत्यक्षादिक तैं होय है सो न ठहैरे । बहुरि एकान्त करि आगम ही तैं सिद्ध होना मानिये, तो प्रत्यक्षादि तैं विरुद्ध तथा परस्पर विरुद्ध हैं पदार्थ जिनकैं ऐसैं आगमोक्त मत ते भी सिद्ध ठहरैं । ऐसैं दोष आवे है यहां ऐसा जानना जो समस्त ही लौकिक जन तथा परीक्षक जन अपने आदरने योग्य उपेय तत्त्व कूं निश्चय करि अर तिसका उपाय तत्त्व का निश्चय करैं हैं सो यहां मोक्ष के अर्थीन कू भी मोक्षका स्वरूप का निश्चय करि अर तिसका उपाय का निश्चय करावना, यहां केई अन्यमती अनुमान ही तैं उपेय तत्त्व की सिद्धि मानैं हैं। तिनकैं प्रत्यक्षादिक तैं गति करिये वस्तु की प्राप्ति तथा ज्ञान न होय, जातैं अनुमान होय है । जो आदि में लिंग का प्रत्यक्ष दर्शन होय तथा दृष्टांत प्रत्यक्ष होय तब होय है । यातैं प्रत्यक्ष विना अनुमान की भी सिद्धि नाहीं होय है-तातैं हेतु तैं एकांत करि सिद्धि मानना श्रेष्ठ नाहीं बहुरि केई मीमांसक आदि आगम हीतैं एकांत करि सिद्ध होना मानैं हैं । तिनकैं परस्पर विरुद्ध अर्थ जिनमैं पाइए ऐसैं सर्व ही मत सिद्ध ठहरैं । जातैं आगम का प्रमाणता युक्ति हेतु आदि करि कियें विना प्रमाण ठहर तब सम्यक् मिथ्या का विभाग कैसैं ठहरै तातैं आगम तैं भी सिद्ध होना एकांत करि मानना श्रेष्ठ नाहीं । ऐसैं दोऊ ही एकांत बाधा करि सहित हैं । आगैं दोऊ तैं सिद्ध मानने का एकांत विषैं दोष दिखावैं हैं ॥ ७६ ॥

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमितियुज्यते ॥ ७७ ॥

अर्थ—स्याद्वाद न्याय के विद्वेषी एकान्त वादीन कै हेतु अर आगम दोऊ एक स्वरूप मानना मति होहु जातैं दोऊ मैं एकांत करि

माननें में विरोध दूषण आवै है बहुरि अवक्तव्य एकान्त मानें। अवक्तव्य है ऐसें कहना न बणैं। कहतें वक्तव्य भी ठहरै, तब एकान्त कहना न बणैं। ऐसें एकान्त में दूषण है आगैं हेतु का अर अहेतु का अनेकान्त कूँ दिखावैं हैं ॥ ७७ ॥

वक्तर्यनाप्तेयद्धेतोः, साध्यं तद्धेतुसाधितं ।
आप्तेवक्तरितद्वाक्यात्साध्यमागमसाधितं ॥ ७८ ॥

अर्थ—वक्ता अनाप्त होतें जो हेतुतैं साध्य होय सो तो हेतु साधित है। बहुरि वक्ता आप्त होतैं तिसके वचननैं साध्य होय सो आगम साधित है। यहां आप्त अनाप्तका स्वरूप पूर्वै कह्या था जो दोष आवरण रहित सर्वज्ञ वीतराग है सो ऐसा अरहंत भगवान् जातैं ताके वचन युक्ति आगमतैं अविरोधरूप हैं अर ताकें कहे भापे तत्व प्रमाणतैं बाधे न जाय हैं। बहुरि जो दोप सहित है सर्वज्ञ वीतराग नाहीं सो अनाप्त है ताके वचन इष्टतैं प्रत्यक्ष बाधित हैं तातैं आप्तके तो वचन ही प्रमाण करने अर अनाप्त के वचन परीक्षा करि प्रमाण करनें इत्यादि चर्चा अष्ट सहस्री तैं जानना ऐसें कथंचित् सर्व हेतु तैं सिद्ध है। जातैं जहां आप्त के वचन की अपेक्षा नाही बहुरि कथंचित् आगमतैं सिद्ध है जातैं जहां इंद्रिय प्रत्यक्ष अर लिंग की अपेक्षा नाही इत्यादि पूर्वै प्रकार की जैसें सप्तभंगी प्रक्रिया जोडणी ॥ ७८ ॥

चौपाई।

मोक्षतत्व अर मोक्ष उपाय हेतु अहेतु कथंचित भाय
साध्यो अनेकान्त तैं भले तजि एकान्त पक्ष मुनि चलैं।

इतिश्री स्वामी समंत भद्र विरचित आप्त मीमांसा नाम देवागम स्तोत्र की संक्षेप अर्थरूप देश भाषा मय वचनिका विषैं छठा परिच्छेद समाप्त भया ॥ ६ ॥

इहां ताई कारिका अठहत्तर भई—आगें सातवाँ परिच्छेदका प्रारंभ ।

दोहा ।

अतरग बहि तत्त्व दो अनेकान्त तें साधि ।
नरतायें तिनक्रमम् । मिथ्या पक्ष सुबाधि ॥ १ ॥

अब इहा प्रथम ही अतरग अर्थ ही कू एकात करि मानैं तामैं दूषण दिखावैं हैं ।

अन्तरगार्थतैकाते बुद्धिवाक्य मृषाखिल ।
प्रमाणा भासमेवातस्तत्प्रमाणादृते कथ ॥ ७९ ॥

अर्थ—अतरगार्थ कहिये अपने ही सवेदन अनुभव मैं आवै जो ज्ञान ताका एकात जो बाह्य पदार्थ नैं मानना, ताके होतैं बुद्धिवाक्य कहिये हेतुवाद का कारण उपाध्याय शिष्य का वाक्य सो सर्व ही मृषा कहिये असत्य झूठा ठहरै । जातैं वाक्य है सो बाह्य पदार्थ है सो अतरंग एकान्त मैं काहे का ठहरै । बहुरि जब बुद्धि वाक्य झूठे ठहरैं तब पर कू प्रतीत उपजावनें कू प्रमाण वाक्य करना सो भी प्रमाणा भास ही ठहरा बहुरि प्रमाणाभास है सो प्रमाण विना कैसे होई ? नाहीं होय ।

ऐसैं दूषण आवै । इहा अंतरगार्थ एकात माननेवाला विज्ञानाद्वैत-वादी बौद्ध है सो बाह्य पदार्थ मानने वालेकू दूषण दे है सो वचनि करि दे है । अरि वचनिकू परमार्थ भूत मानैं नाहीं तब झूठे वचन हैं सो प्रमाण भूत नाहीं प्रमाणाभास हैं । तब दूषण देना सत्यार्थ कैसे होय बहुरि अपना स्वसवेदनरूप अतरग तत्व स्वतै ही सिद्ध न होय है । जातैं स्वसवेदनकू अद्वैतता मानै है । तब द्वैत मानै विना साध्य साधनादि भेद नाहीं बणे है भेद मानै तो अद्वैत एकात न ठहरै बहुरि स्वत सिद्ध ठहरै । तब अन्य बाह्य तत्व मानै है तिनका मानना

सत्यार्थ ठहरै तिनकौ निषेधै तौ काहे तैं निषेधै। इत्यादि अंतरंग एकान्त माननैं मैं दूषण है ॥ ७९ ॥

आगैं संवेदना द्वैतवादी बौद्धकूं फेर दूषण दिखावैं हैं।

साध्यसाधनविज्ञप्तेर्यदि विज्ञप्तिमात्रता।
न साध्यं न च हेतुश्च, प्रतिज्ञा हेतु दोषतः ॥ ८० ॥

अर्थ—*विज्ञानाद्वैतवादी ऐसैं कहै जो साध्य साधनका विज्ञप्ति* कहिये विज्ञान है ताकै विज्ञप्तिमात्रता कहिये विज्ञान मात्र पणा ही है। तातैं नतौ साध्य ठहरै न हेतु ठहरै जातैं याकै प्रतिज्ञा अर हेतुका दोष आवै है साध्य युक्त पक्षका वचन सो तौ प्रतिज्ञा, अर साधनका वचन सो हेतु, सो ताकै कहनैं मैं अपने वचन ही तैं विरोध आवै है। जातैं यह विज्ञानाद्वैततत्वकूं ऐसैं साधै है। नीला पदार्थ अर नीला की बुद्धि इनका साथ ग्रहणका नियम है तातैं अभेद है। जैसैं नेत्र विकारतैं दोय चन्द्रमा दीखें सो परमार्थतैं एक ही है। तैसैं नील पदार्थ अर नील बुद्धिकूं दोय मानना भ्रम है। ऐसैं अपना तत्वकूं साधै ताकैं अपने वचन ही तैं विरोध आवै है। साध्य साधनरूप संवेदन दोय देवै अर एकपणाका एकान्त कहै ताकै विरोध कैसै न आवै है। यहां धर्म्म धर्म्मीका भेद वचन कह्या संवेदन दोयका वचन कह्या। बहुरि ज्ञान अर वचन ये दोय कह्या बहुरि हेतु दृष्टान्तका भेदका वचन कह्या तौ अभेद कहने मैं विरोध कैसैं न आवै बहुरि वचनतैं विरोधका भय करि अवक्तव्य कहै अवक्तव्यका वचनभी बणै। बहुरि कहै जो अन्य कोई द्वैत मानै है ताकी मान्य के निषेध कूं मैं भी भेदका वचन कहूं हौं तौ अद्वैत एकान्त माननेतैं तौ अन्य दूजा ठहरै ही नाहीं। निषेध कौंन कूं है। इत्यादि दूषण आवै है। तातैं संवेदना द्वैत वादी मिथ्या दृष्टि है।

ऐसैं अतरगार्थ एकान्त पक्ष मैं बुद्धि वाक्य तथा सम्यक् प्रकार उपाय तत्व नाहीं सभवै है। तातैं श्रेष्ठ नाहीं ॥ ८० ॥

आगैं बहिरंगार्थ पक्ष मैं दूषण दिखावैं हैं।

बहिरगार्थतैकाते, प्रमाणाभासनिन्हवात् ॥
सर्वेषा कार्यसिद्धि:, स्याद्विरुद्धार्थाभिधायिनाम् ॥८१॥

अर्थ—बहिरगार्थ कहिये बाह्य घट पट आदि पदार्थ तिनका एकान्त कहिये बाह्य पदार्थ ही परमार्थ भूत है। अतरगार्थ ज्ञान है सो परमार्थ नाहीं। ऐसा पक्ष होतें प्रमाणाभास का लोप होय है। ताके लोप तैं सर्व ही परस्पर विरुद्ध पदार्थ का स्वरूप कहने वालेनिकैं कार्य-सिद्धि ठहरै है प्रमाण अप्रमाण का विभाग नाहीं ठहरै जातैं प्रमाण अप्रमाण स्वरूप तो ज्ञान है सो ज्ञान परमार्थ भूत नाहीं। तब अप्रमाण काहे का विरुद्ध स्वरूप कहने वाले भी साँचे ठहरें हैं ऐसैं दोष आवे है॥ ८१ ॥

आगैं अतरग वहिरग दोऊ पक्ष मानि एकान्त माने तथा अवक्तव्य एकान्त मानै तामैं दूषण दिखावैं है।

विरोधान्नोभयैकात्म्य, स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकातेप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥ ८२ ॥

अर्थ—स्याद्वाद न्याय के विद्वेषीनिकैं उभय कहिये अतरग तत्व ज्ञान अर वाह्य तत्व ज्ञेय ये दोऊ एक स्वरूप न होय हैं जातैं इनमें परस्पर विरोध है। बहुरि विरोधके भयस अवाच्यता कहिये अवक्तव्य पक्ष का एकान्त ग्रहण करै तो अवाच्य है। ऐसा उक्ति कहिये कहना न बणैं ऐसैं दोष है॥ ८२ ॥

आगैं कहैं है। जो दोऊ पक्ष कूँ स्याद्वादका आश्रय लेय कहै तौ दोष नाहीं है।

रूप जो वाह्य अर्थ तिस सहित ही है। जैसे प्रमा कहिये प्रमाण की उक्ति कहिये सज्ञा है। तिन प्रमाणनिका वाह्यार्थ प्रत्यक्ष परोक्षआदि है। तैसें ही मायादिक भ्रान्ति भी सशयादिक ज्ञानके भेद रूपहै। इनका वाह्यार्थ कैसे नाहीं। बहुरि इहा चारवाकमती कहे? जो शरीर इन्द्रीयादिका समूह है सो ही जीव शब्दका अर्थ है। इनतें भिन्न स्वरूप तो जीव वस्तु किछु है नाहीं ताकू कहिये है। जो जीव जैसा अर्थ लोक प्रसिद्ध जीवका ग्रहण है जीव चालै है जीव गया जीव तिष्ठ है एसा लोक प्रसिद्ध व्यवहार है सो ऐसा व्यवहार शरीर विषै नाहीं है। इंद्रियनि विषै नाहीं है। बहुरि बोलनाआदि शब्दआदि विषै नाहीं है। जो इनका भोगने वाला आत्मा है ताहीविषै यह व्यवहार है बहुरि कोऊ चारवाक मती कहै। ऐसा जीव गर्भ तैं लेय मरणपर्यत है अनादि अनत नाहीं। ताकू कहिये जो जन्मतै पहिलैं अर मरणके पीछे भी जीवका अस्तित्व है। ऐसा जीव पृथ्वी आदिकतैं उपजै नाहीं। इनतैं जीव विलक्षण है। पृथ्वी आदि जड है जीव चैतन्य है जे चारवाक ऐसैं तैं मानै ताके भी तत्व की सख्या लक्षणके भेद तै है सो न बणै। ऐसें काय सहित जीवके विषै जीवका व्यवहार है। बहुरि बौद्धमती क्षणिक चित् सतान विषै जीवका व्यवहार करे। ता यह्र भी न बणे। यातैं उपयोग स्वरूप कर्त्ता भोक्ता स्वरूप ही जीव शब्दका वाह्यार्थ है। बहुरि कोई कहे। सज्ञा हेतु तैं जीव अर्थ साध्या सो सज्ञा तो वक्ताका अभिप्राय साध्है। ताकू कहिये ऐसैं नाहीं जामें अर्थ क्रिया होय सो सज्ञा का बाह्यार्थ है। कोई कहे खर विषाण सज्ञाका कहा अर्थ है। ताकूँ कहिये अभावके निक्षेप की प्राप्ति याका अर्थ है सो यही भी सज्ञा वाह्य अर्थ विना नाहीं है। इत्यादि जानना ॥८४॥

भावप्रमेयापेक्षायां प्रमाणाभासनिह्नवः ।
बहिःप्रमेयापेक्षायां प्रमाणं तन्निभं च ते ॥ ८३ ॥

अर्थ—भावप्रमेय कहिये ज्ञान है से सब ही भेदनि सहित स्वसंवेदन रूप है अपना ज्ञानकाहू क्षयकू जानू। ज्ञान मात्र करि तौ अपनें आस्वाद में आवै है तिसकी अपेक्षा तो सर्व ज्ञान स्वसंवेदन प्रत्यक्ष प्रमाण स्वरूप है । प्रमाणाभास किछू भी नाहीं है। बहुरि बाह्य प्रमेय की अपेक्षा कहू प्रमाण है कहू अप्रमाण है। प्रमाणाभास है तहां विसंवाद होय बाधा आवे तहां तौ प्रमाणाभास है बहुरि जहां निर्बाध होय तहां प्रमाण है। जातैं एक ही ज्ञान कैं ज्ञान के आवरण के अभाव सद्भाव के विशेष तैं सत्य असत्य संवेदन परिणाम की सिद्धि है। और ते कहिये तुम्हारे अर्हंत के मत विषै सिद्धि होय है ॥ ८३ ॥

आगे जीव ऐसा शब्द है । सो याका बाह्य अर्थ भी है तहाँ चार्वाक आदि मतवाला कहै जो जीव ही नाहीं तौ जाव ऐसा शब्द कैसैं कह्या । जीवका ग्रहण करनेवाला प्रमाण नाहीं, ऐसैं कहने वाले कूं जीव का ग्राहक प्रमाण का सद्भाव दिखावें हैं,—

जीवशब्दः स बाह्यार्थः संज्ञात्वाद्धेतुशब्दवत् ।
मायादिभ्रान्तिसंज्ञाश्च, मायाद्यैः स्वैः प्रमोक्तिवत् ॥ ८४ ॥

अर्थ—जीव ऐसा शब्द है सो बाह्य पदार्थ सहित है इस शब्द का अर्थ जीव वस्तु है । जातैं यह शब्द संज्ञा है नाम है जे संज्ञा है अर नाम हैं ते बाह्य पदार्थ बिना होय नाहीं । जैसे हेतु शब्द है से बाह्य याका अर्थ है । वादी प्रतिवादी प्रसिद्ध है । बहुरि यहां कोई कहै माया आदि भ्रांति का संज्ञा है। तिनका बाह्य पदार्थ कहा है तहां कहिये मायादिक भ्रान्तकी संज्ञा हैं। ते भी अपने स्वरूप

आगें इसी अर्थकूं विशेष करि सार्ने है।

बुद्धिशब्दार्थसञ्ज्ञास्तास्तिस्रो बुद्ध्यादिवाचका।
तुल्या बुद्ध्यादिबोधाश्च त्रयस्तत्प्रतिबिम्बका ॥ ८५ ॥

अर्थ—बुद्धि शब्द अर्थ ये तीन सज्ञा हैं ते बुद्धि शब्द अर्थ ये तीन संज्ञानितें भिन्न बाह्यार्थ हे तिनका वाचक है। बहुरि बुद्धि शब्द अर्थ इनका बोध भी तीन है ते तिनतें तुल्य हैं समान हैं। ते तिन तीननिका प्रतिबिम्बक व्यजक है। इहा ऐसा जानना। जो पहिली कारिकामें संज्ञापणाका हेतु तें वाह्य पदार्थ साध्या था, तहा बौद्धमती एसैं कहे है। जो जीव शब्दका हेतु वाह्यार्थ तो सज्ञापणा हेतु तें सधे। परतु जीव शब्द का बुद्धि और जाव शब्दका शब्द ये भी अर्थ है। ते सौ विपक्ष है तिनमैं सज्ञापणा हेतु व्यापै है। तातें इस हेतुके व्यभिचार आवे है तातूं आचार्य इस कारिकामैं उपदेश देय व्यभिचार मेटया है जो सज्ञापणा हेतु तो वाह्यार्थ सहितपणा ही कूं सार्ने है। बुद्धि शब्द अर्थ ये सज्ञा है। ते इनका वाह्यार्थ बुद्धि शब्द अर्थ है। तिनहीके वाचक हैं। और बुद्धि शब्द अर्थ इनका ज्ञान है सो भी तिन तीननि तें तुल्य है सो तिन वाह्यार्थनिका प्रतिबिम्बक है दिखानेवाला है जैसे अर्थ है पदार्थ जाका ऐसा जीव शब्द है। सो याते आनकूं न हनना। ऐसैं कहै जाव अर्थ का प्रतिबिम्बक बोध उपजे है। तैसैं ही बुद्धि है पदार्थ जाका ऐसा जीव शब्द ते जीव है। ऐसा जानिये है। ऐसा बुद्धि अर्थ का प्रतिबिम्बक होय है तैसे ही शब्द है पदार्थ जाका ऐसा जीव शब्द तै जीवकूं कहैं है ऐसा ज्ञान होय है ऐसे शब्द का प्रतिबिम्बक होय है। ऐसे सज्ञा तौ वाह्य पदार्थने कहैहै। अर शब्द का अर्थ, नाम, ज्ञान, ये तीनों तिनके समान है। जे प्रतिबिम्बक हैं। जातै तिन तीनून का ज्ञान करावैं हैं। ऐसे व्यभचार मेट्या है ॥ ८५ ॥

आगैं विज्ञाद्वैतवादी बौद्ध कहै जो सज्ञापणा तैं शब्द कू वाह्यार्थ सहित साध्या सो हमतौ वाह्यार्थ सिद्धि नैं करैं हैं। सज्ञा है सो भी विज्ञानही है तिस तैं भिन्न वाह्य पदार्थ तो नाहीं है बहुरि हेतु शब्दका दृष्टान्त है सो भी साधन विकल दृष्टान्ताभासहे हेतु भी विज्ञानमैं आय गया, ताकू आचार्य उत्तर रूप कारिका कहैं हैं।

वक्तृश्रोतृप्रमातृणा बोधवाक्यप्रमाः पृथक्
भ्रांतावेव प्रमाभ्रांतौ वाह्यार्थौ तादृशेतरौ ॥ ८६ ॥

अर्थ—वक्ता श्रोता ओर प्रमाता ये इन तीनूनका बोध वाक्य प्रमाण ये तीनू ही भिन्न भिन्न हैं। यहा कहैं ये तीनू ही भ्रान्ति हैं भ्रम रूप हैं तौ भ्रान्ति स्वरूप होते प्रमाण होना भी भ्राति ही ठहरै। फेर कहै प्रमाण भी भ्रान्ति ही होहु तौ प्रमाण भ्रान्ति स्वरूप होतैं प्रमाण अप्रमाण स्वरूप वाह्य पदार्थ प्रमेय हैं ते भी भ्रान्ति स्वरूप ठहरैं हैं। ऐसैं होते अंतरग ज्ञानका अर वाह्य पदार्थका सर्व ही का लोप होय। तब संवेदनाद्वैतवादी की भी सिद्धि नाहीं होय है। इहा ऐसा जानना जो वक्ताकै अर्थका ज्ञान विना तौ वाक्य कैसे प्रवर्त्त बहुरि वक्ताका वाक्य नैं (न) प्रवर्तै तब श्रोताकैं अर्थका ज्ञान कैसे होय। बहुरि प्रमाता, यथा अयथा, पदार्थका निर्णय करने वाला ताकै पदार्थकी प्रमाणता नै होय तौ शब्द अर अर्थ जे प्रमेय तिनका यथार्थपणा कैसे होय। तातैं वक्ता श्रोता प्रमाताका ज्ञान वाक्य प्रमाणता न्यारे न्यारे माननैं जो संवेदनाद्वैतवादी न मानैं तौ ताका संवेदना द्वैत भी सिद्ध न होय है ॥ ८६ ॥

आगैं संवेदना द्वैतवादी कहै जो भ्रान्ति रहित प्रमाण निर्बाध मानिये है तौ आचार्य कहैं हैं वाह्य पदार्थ भी मानना। वाह्य पदार्थ माने विना प्रमाण अर प्रमाणा भासकी व्यवस्था नाहीं ठहरै है।

आगैं इसी अर्थकूं विशेष करि साधैं हैं ।

बुद्धिशब्दार्थसंज्ञास्तास्तिस्रो बुद्ध्यादिवाचकाः ।
तुल्या बुद्ध्यादिबोधाश्च त्रयस्तत्प्रतिबिम्बकाः ॥ ८५ ॥

अर्थ—बुद्धि शब्द अर्थ ये तीन संज्ञा हैं ते बुद्धि शब्द अर्थ ये तीन संज्ञानितैं भिन्न बाह्यार्थ हे तिनका वाचक है। बहुरि बुद्धि शब्द अर्थ इनका बोध भी तीन है ते तिनतैं तुल्य हैं समान हैं । ते तिन तीननिका प्रतिबिंबक व्यंजक है। इहां ऐसा जानना। जो पहिली कारिकामें संज्ञापणाका हेतु तैं बाह्य पदार्थ साध्या था, तहां बौद्धमती एसैं कहै है। जो जीव शब्दका हेतु बाह्यार्थ तो संज्ञापणा हेतु तैं सधै । परन्तु जीव शब्द का बुद्धि और जाव शब्दका शब्द ये भी अर्थ है। ते तौ विपक्ष है तिनमैं संज्ञापणा हेतु व्यापै है। तातैं इस हेतुकै व्यभिचार आवै है ताकूं आचार्य इस कारिकामैं उपदेश देय व्यभिचार मेटया है जो संज्ञापणा हेतु तो बाह्यार्थ सहितपणा ही कू साधै है। बुद्धि शब्द अर्थ ये संज्ञा हैं। ते इनका बाह्यार्थ बुद्धि शब्द अर्थ है। तिनहीके वाचक है। और बुद्धि शब्द अर्थ इनका ज्ञान है सो भी तिन तीननि तैं तुल्य है तो तिन बाह्यार्थनिका प्रतिबिम्बक है दिखानेवाला है जैसे अर्थ है पदार्थ जाका ऐसा जीव शब्द है। सो यातैं जानकू न हनना। ऐसैं कहै जान अर्थ का प्रतिबिंबक बोध उपजै है। तैसें ही बुद्धि है पदार्थ जाका ऐसा जीव शब्द तै जीव है। ऐसा जानिये है। ऐसा बुद्धि अर्थ का प्रतिबिंबक होय है तैसे ही शब्द है पदार्थ जाका एसा जाव शब्द तै जीवकू कहैं है ऐसा ज्ञान होय है एसे शब्द का प्रतिबिंबक होय है । ऐसे संज्ञा तो बाह्य पदार्थनै कहैहै । अर शब्द का अर्थ, नाम, ज्ञान, ये तीनों तिनकू समान है। जे प्रतिबिंबक हैं । जातै तिन तीनूंन का ज्ञान करावैं हैं। ऐसे व्यभचार मेट्या है ॥ ८५ ॥

आगे विज्ञाद्वैतवादी बौद्ध कहै जो सज्ञापणा तैं शब्द कू बाह्यार्थ सहित साध्या सो हमतौ बाह्यार्थ सिद्धि नैं करैं हैं। सज्ञा है सो भी विज्ञानही है तिस तैं भिन्न बाह्य पदार्थ तौ नाहीं है बहुरि हेतु शब्दका दृष्टान्त है सो भी साधन विकल दृष्टाताभासहै हेतु भी विज्ञानमैं आय गया, ताकू आचार्य उत्तर रूप कारिका कहैं हैं।

वक्तृश्रोतृप्रमातृणां बोधवाक्यप्रमाः पृथक्
भ्रांतावेव प्रमाभ्रांतौ बाह्यार्थौ तादृशेतरौ ॥ ८६ ॥

अर्थ—वक्ता श्रोता और प्रमाता ये इन तीनूनका बोध वाक्य प्रमाण ये तीनू ही भिन्न भिन्न हैं। यहा कहैं ये तीनू ही भ्रान्ति हैं भ्रम रूप हैं तो भ्राति स्वरूप होतें प्रमाण होना भी भ्राति ही ठहरे। फेर कहै प्रमाण भी भ्राति ही होइ तौ प्रमाण भ्रान्ति स्वरूप होतैं प्रमाण अप्रमाण स्वरूप बाह्य पदार्थ प्रमेय हैं ते भी भ्राति स्वरूप ठहरैं हैं। ऐसैं होत अन्तरग ज्ञानका अर बाह्य पदार्थका सर्व ही का लोप होय। तब संवेदनाद्वैतवादी की भी सिद्धि नाहीं होय है। इहा ऐसा जानना जो वक्ताके अर्थका ज्ञान बिना तौ वाक्य कैसे प्रवर्त बहुरि वक्ताका वाक्य नैं (न) प्रवर्ते तब श्रोता कैं अर्थका ज्ञान कैसे होय। बहुरि प्रमाता, यथा अयथा, पदार्थका निर्णय करने वाला ताके पदार्थकी प्रमाणता नैं होय तौ शब्द अर अर्थ जे प्रमेय तिनका यथार्थपणा कैसे होय। तातैं वक्ता श्रोता प्रमाताका ज्ञान वाक्य प्रमाणता न्यारे न्यारे माननै जो संवेदनाद्वैतवादी न मानैं तो ताका संवेदनाद्वैत भी सिद्ध न होय हैं ॥ ८६ ॥

आगैं संवेदना द्वैतवादी कहै जो भ्रान्ति रहित प्रमाण निर्बाध मानिये है तौ आचार्य कहैं हैं बाह्य पदार्थ भी मानना। बाह्य पदार्थ माने बिना प्रमाण अर प्रमाणाभासकी व्यवस्था नाहीं ठहरै है।

बुद्धिशब्दप्रमाणत्वं, बाह्यार्थे सति नासति ।
सत्यानृतव्यवस्थैवं, युज्यतेऽर्थाप्त्यनाप्तिषु ॥ ८७ ॥

अर्थ—बाह्य पदार्थके होतें तो बुद्धिके अर शब्दके प्रमाणपणा है । अर बाह्य पदार्थके न होतें बुद्धिके अर शब्दके प्रमाणपणा नाहीं है । जातें अर्थ की प्राप्ति अर अप्राप्ति विषै ऐसे ही सत्य की अर असत्य की व्यवस्था युक्ति होय है । बाह्य पदार्थ विना बुद्धिकैं अर शब्दकै प्रमाणता नैं होय है । इहां ऐसा जानना—जो बुद्धि तौ ज्ञान है सो तौ अपने ही वस्तुके प्रतिके अर्थ है बहुरि शब्द है सो परके प्रतिपादनके अर्थ है । वचन विना परका ज्ञान परके प्रत्यक्ष ग्रहण मैं नाहीं आवे है ॥ बहुरि स्वपक्षका साधना पर का पक्ष का दूषणा ऐसे ही होय है तातैं जो प्रमाणकूं निर्बाध मान अपनी पक्ष साध्या चाहै ताकूं बाह्य पदार्थ भी मानना या बाह्य पदार्थ बिना प्रमाण प्रमाणाभास न ठहरै है । ऐसे बाह्य पदार्थ सिद्धि होतें वक्ता श्रोता प्रमाता ये तीनूं सिद्ध होय हैं । बहुरि तिनकै ज्ञान वचन प्रमाण ये तिनूं सिद्ध होय हैं ऐसे जीव शब्द कैं सज्ञापणा हेतु तैं बाह्यार्थ सहितपणा सिद्धि होय है । बहुरि याही तैं जीव की सिद्धि होय है याही तैं जीव पदार्थ कूं जाणि अर प्रवर्त्तनेके निर्बाध सनाथ की सिद्धि है । ऐसे भाव प्रमेयकी अपेक्षा तौ कथंचित् सर्व ज्ञान अभ्रान्त सिद्ध होय । बहुरि बाह्य प्रमेय की अपेक्षा कथंचित् बाह्य पदार्थ विषैं विसंवाद तैं भ्रांति सिद्धि होय है अविसंवादतै अभ्रान्ति सिद्ध होय है। ऐसैं भी कथंचित् उभय, कथंचित्-अवक्तव्य, कथंचित् अभ्राति वक्तव्य, कथंचित् भ्राति अवक्तव्य, कथंचित् उभया वक्तव्य, ऐसैं पूर्ववत् सप्तभंगी प्रक्रिया जोड़नी । ऐसें अंतरग बाह्य तत्वका निर्णय किया कूं ज्ञायक उपाय तत्व कहिये ॥ ८७ ॥

चौपाई

अतरग वहिरग विचार, पक्ष होय एकान्त निवार ।
तत्व जनायौ श्री मुनिराय, अनेकात है सत्य उपाय ॥ १ ॥

इति श्री आप्त मीमासा नाम देवागम स्तोत्र की
सक्षेप अर्थ रूप देश भाषा मय वचनिका
विषै सातवा परिच्छेद समाप्त भया ।

इहा ताई कारिका सत्यासी भई ॥८७॥
आगै आठमा परिच्छेदका प्रारम्भ है—

अष्टम परिच्छेद ।



दोहा

देवर पौरुष पक्षका, हट जिन यथा जनाय ।
अनेकांततें साधि जिन, नमूं मुनिनिके पाय ॥ १ ॥

अब यहां कारक लक्षण उपेयतत्त्वकी परीक्षा करैं हैं । तहां प्रथम ही दैव हीतें कार्य सिद्धि है ऐसा एकान्त पक्ष माने तामें दोष दिखावैं हैं ।

दैवादेवार्थसिद्धिश्चेद्दैवं पौरुषतः कथं ।
दैवतश्चेदनिर्मोक्षः पौरुषं निष्फलं भवेत् ॥ ८८ ॥

अर्थ—जो दैव हीतें एकान्तकरि सर्व प्रयोजन भूत कार्य सिद्धि है ऐसे मानिए तो तहां पूछिए है । जो पुण्य पाप कर्म सो पुरुष के शुभ अशुभ आचरण स्वरूप व्यापार तें कैसें उपजे है । इहां कहै अन्य दैव जो पूर्वे था तातें उपजे है, पौरुषतें नाहीं सादृ कहिए । ऐसें तो मोक्ष होनेका अभाव ठहरे है । पूर्वे पूर्व दैवतें उत्तरोत्तर दैव उपजनो करै तब मोक्ष कैसे होय पौरुष करना निष्फल ठहरे । तातें दैव एकान्त श्रेष्ठ नाहीं । इस ही कथन करि केई ऐसें एकान्त करे जो धर्मका अभ्युदयतें मोक्ष होय है । ताकामी निषेध जानना । बहुरि यहां कोई कहै जो आप पौरुष रूप न प्रवर्तें काय्यका उद्यम न करे ताके तो सर्व इष्टानिष्ट कार्य्य अदृष्ट जो दैव तिसमात्र तें होय है । बहुरि जो पौरुष रूप उद्यमकरै है ताके पौरुषमात्र तें होय है । तहां उत्तर जो ऐसें कहनेवाला भी परीक्षावान नाहीं जातें साथि उद्यम करने वालेनिकें भी कोई कैं तो कार्य निर्विघ्न सिद्ध होय कोईकैं कार्य्य तो नैं होय अर उलटा अनर्थ

की प्राप्ति होय ऐसे देखिए है। तातैं ऐसैं है योग्यता अथवा पूर्व कर्म-सो तौ दैव है। सो ये दोऊ तौ अदृष्ट हैं। बहुरि इसभवमें जो पुरुष चेष्टाकरि उद्यम करै सो पौरुष है सो यहु दृष्ट है तिन दोऊनि तैं अर्थ की सिद्धि है। पौरुष वालेकें तो नाहीं होता देखिये है। अर दैव मात्रतैं माननें विषैं बाछा करना अनर्थक ठहरे है। मोक्षभी होय है सो परम पुण्यका उदय अर चरित्रका विशेष आचरण रूप पौरुषतें होय है। तातैं दैवका एकान्त श्रेष्ठ नाहीं ॥ ८८ ॥

आगैं पौरुष ही तैं कार्य सिद्धि है, ऐसे एकांत मानै तामैं दूषण दिखावैं हैं।

पौरुषादेवसिद्धिश्चेत्पौरुषं दैवतः कथं।
पौरुषाच्चेदमोघं स्यात्सर्वप्राणिषु पौरुषं ॥ ८९ ॥

अर्थ—जो पौरुष ही तैं अर्थकी सिद्धि है, ऐसा एकांत पक्ष मानै ताकूं पूछिए, जो पौरुष दैव तैं कैसें होय है, तातैं जो कार्यकी सिद्धि है सो दैव की निपजाई है सो पौरुष करावै है। जातैं ऐसा प्रसिद्ध वचन है, जो जैसी भवितव्यता होणी होय तैसी बुद्धि उपजे हैं। तहां पौरुष वादी फेर कहै, जो पौरुष ही तैं पौरुष होय है तो ताकू कहिए ऐसैं तो पौरुष सर्व प्राणी करै है। तिनका सर्व ही का फल भया चाहिये सो है नहीं। कोई कै सफल होय है कोई के निष्फल होय है। इहां कहे जो जाके सम्यक ज्ञानपूर्वक, पौरुष होय है ताकै तौ सफल होय है बहुरि मिथ्या ज्ञान पूर्वक होय ताके निष्फल होय है ताकू कहिए जो सम्पूर्ण सम्यक ज्ञान तो सर्वज्ञ कै है। बहुरि छद्मस्थ कै तौ आपके ज्ञान मैं आई जे सत्यार्थ सामग्री तिनतैं भी पौरुष तैं कार्य नैं होता देखिए है। तातैं पौरुषका एकांत पक्ष भी श्रेष्ठ नाहीं ॥ ८९ ॥

आगें दोऊ पक्ष का एकान्त में तथा अवक्तव्य एकान्त में दूषण दिखावें हैं ॥

विरोधान्नोभयकात्म्यं, स्याद्वादन्यायविद्विषां,
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥ ९० ॥

अर्थ—स्याद्वादन्याय के विद्वेषीनिकैं दैव पौरुष दोऊ पक्ष एक स्वरूप सम्भवै नाहीं। जातें दोऊ पक्ष में परस्पर विरोध है। बहुरि दोऊका अवक्तव्य एकान्त पक्षभी नाहीं बणें जातें अवाच्य है ऐसाभी कहना वक्तव्य पक्ष है सो न बणें। तातें स्याद्वादन्याय ही श्रेष्ठ है ॥ ९० ॥

आगें पूछया जो स्याद्वादन्याय कैसें है ऐसें पूछें आचार्य्य कहैं हैं

अबुद्धिपूर्वापेक्षायामिष्टानिष्टं स्वदैवतः ।
बुद्धि पूर्वविपेक्षायामिष्टानिष्टं स्वपौरुषात् ॥ ९१ ॥

अर्थः—जो पुरुषकी बुद्धिपूर्वक नैं होय तिस अपेक्षा विषैं तौ इष्ट अनिष्ट कार्य्य है सो अपने दैव ही तैं भया कहिये तहां पौरुष प्रधान नाहीं दैव का ही प्रधानपणा है। बहुरि जो पुरुष की बुद्धि पूर्वक होय तिस अपेक्षा विषैं पौरुष तैं भया इष्टानिष्ट कार्य्य कहिये। तहां दैव का गौण भाव है पौरुष ही प्रधान है। ऐसे परस्पर अपेक्षा जाननी। ऐसैं कथंचित् सर्व दैवकृत है। अबुद्धि पूर्वक पणातैं बहुरि कथंचित् बुद्धिपूर्वकपणातैं सर्व पौरुष कृत ही है। कथंचित् उभय, कथंचित् अवक्तव्य, कथंचित् दैवकृत अवक्तव्य, कथंचित् पौरुष कृत अवक्तव्य कथंचित् उभयकृत अवक्तव्य, ऐसें सप्तभंगी प्रक्रिया पूर्ववत् जोड़नी ॥ ९१ ॥

चौपाई ।

बुद्धिपूर्वमैं पौरुष मानि दैवकीयमैं बुधि मिलानि
ऐसैं अनेकांत जे गहैं । ते जन कार्यसिद्धि सब लहैं ॥ १ ॥

इतिश्री आप्तमीमांसानाम देवागमस्तोत्रकी संक्षेप
अर्थ रूप देश भाषामय वचनिका विषैं
अठमा परिच्छेद समाप्त भया ।

इहां ताईं कारिका इक्याणवै भई । आगैं नवमैं परिच्छेदका प्रारम्भ है ।

नवम परिच्छेद ।



दोहा ।

पुण्य पापके बंध इ, स्याद्वादतें साधि ।
कियौ यथारथ जैनमुनि नमों नितहि तजि आधि ॥ १ ॥

अब इहां पूर्वपरिच्छेदमें देव कह्या सो देव इष्ट अनिष्टकार्य्यका साधन प्राणीनिकैं दोय प्रकार कह्या है। एक पुण्य दूजा पाप तहां साता वेदनीय, शुभआयु, शुभनाम, शुभगोत्र, ऐसैं च्यार तौ पुण्य कर्मरूप हैं। बहुरि इनतें अन्यकर्म प्रकृति हैं ते पाप कर्म्म कहे हैं तिनका भेद तौ सिद्धान्ततें जानना। अब इहां कहैं हैं जो इनका आश्रव बंध कैसे होय है। तहां कोऊ ऐसा एकान्त पक्ष मानै जो परकूं दुःख देनमें तौ पाप है अर परकूं सुखी करनेमें पुण्य है। ऐसैं एकान्त पक्षमैं दूषण दिखावैं हैं।

पापं ध्रुवं परे दुःखात् पुण्यं च सुखतो यदि।
अचेतनाकषायौ च बध्येयातां निमित्ततः ॥ ९२ ॥

अर्थ—पर विषैं दुःख करनेतें तौ ध्रुव कहिये एकांत करि पाप बंध होय है। बहुरि पर विषैं सुख करनेतें एकान्त करि पुण्य बंध होय है। जो ऐसा एकान्त पक्ष मानिये तौ अचेतन ने तृण कंटकादिक दुःख करनेवाले बहुरि दूध आदि सुख करने वाले अर अकषाय जो कोप रहित वीतराग मुनि आदि ते भी पुण्य पाप करि बंधे जावैं पर विषैं सुख दुःख उपजना निमित्तका सद्भाव पाइए है। इहां कहै जो चेतन ही बंध योग्य है तौ वीतराग मुनि चेतन हैं ते भी बंधैं। फेर

यहा कहै वीतराग मुनिनके सुख दु ख उपजावनेका अभिप्राय नाहीं। तातैं ते न बधै तौ ऐसैं कहैं पर विषैं सुख दु ख उपजावने मैं बध होय ही है ऐसा एकात नैं रह्या। इस हेतु तैं नाहीं भी बधै है ऐसा आया ॥ ९२ ॥

आगैं आपकै दु ख करने तै पुण्य बधैं, आप सुख करनैं तैं पाप बधै ऐसा एकान्त मैं दूषण दिखावैं हैं।

पुण्य ध्रुवं स्वतो दुःखात्पाप च सुखतो यदि।
वीतरागो मुनिर्विद्वास्ताभ्या युञ्ज्यान्निमित्तत॰ ॥ ९३ ॥

अर्थ—आपकै दु ख उपजावैं तैं तौ पुण्य बध होय है अर आप कै सुख उपजावैं तैं पाप बध होय है। ऐसा ध्रुव कहिये एकात करि मानिये तौ कषाय रहित अभिप्राय रहित मुनि तथा विद्वान कहिये ज्ञानी पडित ये भी पुण्य पाप दोऊनि करि युक्ति होय बधै जातैं इनकौं निमित्तका सद्भाव है। वीतराग मुनि कैं तौ कायक्लेश आदि दु खकी उत्पत्ति पाईए है, बहुरि ज्ञानी पडित कैं तत्त्व ज्ञान सतोष रूप सुख की उत्पत्ति पाइए है यह निमित्त है। बहुरि कहैं तिनकैं सुख दु ख उपजावनेका अभिप्राय नाहीं है तातैं तिनकै बध नाहीं तो ऐसैं अनेकान्त सिद्धभया इस हेतुतै बध नाहीं भी ठहऱ्या। बहुरि अकषाई भी बधै तौ बध तैं छूटना नाहीं ठहरै। ऐसैं दोऊ ही एकान्त श्रेष्ट नाहीं, प्रत्यक्ष अनुमान तैं विरोध है ॥ ९३ ॥

आगैं दोऊका एकान्त मानैं तामैं दूषण दिखावैं हैं ॥

श्लोक।

विरोधान्नोभयैकात्म्य स्याद्वादन्यायविद्विषा।
अवाच्यतैकान्तेप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥ ९४ ॥

अर्थ—दोऊ एकान्तकूं एक स्वरूप करि एकान्त मानैं तौ दोऊ एक स्वरूप होय नाहीं, जातैं दोऊ पक्षनिमैं स्याद्वादन्यायके विद्वेषीनकैं विरोध है तातैं कथंचित् मानना युक्त है। बहुरि अवक्तव्य एकान्त पक्ष मानैं तौ अवक्तव्य है। ऐसे कहना भी न बनैं तातैं स्याद्वाद ही युक्त है ॥ ९४ ॥

आगैं पूछै है स्याद्वाद विषैं पुण्य पापका आश्रय कैसे बणै है ऐसे पूछैं आचार्य्य कहै हैं।

विशुद्धिसंक्लेशाङ्गं चेत्, स्वपरस्थं सुखासुखम्।
पुण्यपापास्रवौ युक्तौ नचेद्वयर्थस्तवार्हतः ॥ ९५ ॥

अर्थ—आप विषैं अर पर विषैं तथा दोऊ विषैं तिष्ठै उपजावै उपजे जो सुख दुःख सो जो विशुद्धि और संक्लेशका अंग होय तौ पुण्य अर पापका आस्रव युक्त होय। बहुरि जो हे भगवन्! विशुद्धि संक्लेशका अंग न होय तो तुम जो अरहंत तिनके मतमैं व्यर्थ कहा है। तिनतैं बंध नाहीं होय है, तहां विशुद्धतौ मंद कषाय रूप परिणामकूं कहिये है। बहुरि संक्लेश तीव्र कषाय रूप परिणामकूं कहिये है। तहां विशुद्धिका कारण विशुद्धिका कार्य्य विशुद्धिका स्वभाव ये तौ विशुद्धिके अंग हैं। बहुरि संक्लेशके कारण संक्लेशके कार्य्य मैं संक्लेशका स्वभाव ये संक्लेशके अंग हैं। बहुरि विशुद्धिके अंगतैं तौ पुण्यका आस्रव होय है। बहुरि संक्लेशके अंगतैं पापका आस्रव होयहै। तहां आर्त्त ध्यान रौद्र ध्यान परिणाम तो संक्लेश स्वभावहै। बहुरि आर्त्त रौद्र ध्यानका अभाव आत्माका आप विषैं तिष्ठना सो विशुद्धि स्वभावहै बहुरि आर्त्त रौद्र ध्यानके कार्य्य हिंसादिक क्रियाहैं तेभी संक्लेशका अंग है। बहुरि मिथ्या दर्शन, अविरत, प्रमाद, कषाय, योग ये आर्त्त रौद्र ध्यानके कारण हैं तेभी संक्लेशके अंग हैं। बहुरि आर्त्त रौद्र ध्यानका अभाव सो

विशुद्धिका कारण है। बहुरि सम्यग्दर्शनादिक विशुद्धिके कार्य हैं, बहुरि धर्म्म शुक्ल ध्यानके परिणाम हैं। ते विशुद्धिके स्वभाव हैं तिस विशुद्धिके होते ही आत्मा आप विषैं तिष्ठै है। तातैं यह अनेकांत सिद्ध भया। जो स्वपरस्थ सुख दुःख हैं ते कथंचित् पुण्यआस्रवके कारण हैं। जातैं विशुद्धिके अंग हैं बहुरि कथंचित् पापआस्रवके कारण हैं जातैं संक्लेशके अंग हैं। ऐसें ही कथंचित् उभय है, कथंचित अवक्तव्य है, कथंचित् पुण्यहेतु अवक्तव्य है, कथंचित् पापहेतु अवक्तव्य है, कथंचित् उभय अवक्तव्य है, ऐसें सप्तभंगी प्रक्रिया पूर्ववत् जोडनी ॥९५॥

चौपाई।

निजपर सुख दुःख पुण्य बधाय, जो विशुद्धिके अंग जु थाय।
बंधै पाप जो रचै कलेश, परम विशुद्ध बंध नहि लेश ॥१॥

इतिश्री आप्तमीमांसा नाम देवागम स्तोत्र की संक्षेप
अर्थरूप देश भाषा मय वचनिका विषैं
नवमा परिच्छेद समाप्त भया ॥ ९ ॥

यहाँ ताईं कारिका पिच्याणवै भई ॥ ९५ ॥
आगैं दसमा परिच्छेदका प्रारम्भ है।

दशम परिच्छेद ।

दोहा ।

बंध होय अज्ञानतैं, अल्पज्ञानतैं मुक्त ।
दोऊ मिथ्यापक्षविन, नमौं स्यात्पदयुक्त ॥ १ ॥

अब यहाँ अज्ञानतैं बंध ही होय है बहुरि अल्पज्ञानतैं ही मोक्ष होय है । ऐसे दोऊ एकांतपक्ष माननमैं दोष दिखावै हैं

अज्ञानाच्चेद्ध्रुवो बंधो, ज्ञेयानंत्यान्न केवली ।
ज्ञानस्तोकाद्विमोक्षश्चेदज्ञानाद्बहुतोऽन्यथा ॥ ९६ ॥

अर्थ—जो अज्ञानतैं बंध होय है । ऐसा एकांत पक्ष मानिये तो केवली न होय जातैं ज्ञेय पदार्थ अनंत हैं । बहुरि स्तोक कहिये थोरे ज्ञानतैं मोक्ष होय है ऐसा ऐकांतपक्ष मानिये तो रहता अज्ञान बहुत है । तातैं बंध ठहरै तब मोक्ष काहेतैं होय । ऐसैं दोउ एकांत पक्षमें दोष आवै है इहाँ ऐसा जानना जो सर्व पदार्थनको जानैं ताकूं सर्वज्ञ केवली कहिये है सो जेते ऐसा न होय ते ते अज्ञान है ऐसे अज्ञानतै बंध ही हो यो करै तब बंधतैं छूटना बिना केवली कैसैं होय बहुरि अल्पज्ञान होतैं सौं सर्वज्ञ न होय जे तैं बहुत अज्ञान अव शेष है । तातैं बंध होय यह पक्ष आवै । तातैं दोऊ एकांत पक्ष श्रेष्ठ नाहीं ॥ ९६ ॥

आगैं दोऊ एकांत पक्ष माने तथा अवक्तव्य एकांत मानैं तामैं दोष दिखावैं है ॥ ९६ ॥

विरोधान्नोभयैकात्म्यं, स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥ ९७ ॥

अर्थ—स्याद्वाद न्यायके द्वेषी हैं तिनकैं दोऊ पक्ष एक स्वरूप होय नाहीं जातैं इनमैं परस्पर विरोध है। बहुरि अवाच्यताका एकान्त पक्ष भी नाहीं बणैं जातैं यामें अवाच्य है ऐसा भी कहना न बणैं जातैं यह भी पक्ष श्रेष्ठ नाहीं ॥ ९७ ॥

आगें पूछैं हैं जो ऐसैं है तो प्राणीनिकैं बन्ध कौण हेतुतैं होय है। जाकरि इष्ट अनिष्ट कार्य्य प्राणीनिकैं होय है। सो अबुद्धि पूर्वक अपेक्षा होतैं होय हैं ऐसैं पूर्वं कह्या सो कहना बणैं। बहुरि मुनिकैं मोक्ष काहैतैं होय है। जा करि पौरुषतैं इष्टकी सिद्धि बुद्धिपूर्वक अपेक्षातैं होय है। ऐसे पूर्वैं कह्या सो कहना बणैं। अर नास्तिक मतका परिहार होय। ऐसैं पूछैं इस आशंकाके निराकरणके इच्छुक आचार्य कहैं हैं।

अज्ञानान्मोहतो बंधो, नाज्ञानाद्वीतमोहतः ।
ज्ञानस्तोकाद्विमोक्ष[१] स्यादमोहान्मोहितोऽन्यथा ॥ ९८ ॥

अर्थ—मोह सहित अज्ञान है तातैं बन्ध है। बहुरि मोह रहित अज्ञान है तातैं बंध नाहीं है। ऐसैं कथंचित् अज्ञानतैं बन्ध है कथंचित नाहीं। ऐसा अनेकान्त सिद्ध होय है। बहुरि स्तोक ज्ञान होय। अर जामें मोह नाहीं होय ऐसे तो मोक्ष होय है। बहुरि जो स्तोक ज्ञान मोह सहित है तातैं बन्ध होय है ऐसे स्तोक ज्ञानमें अनेकान्त सिद्ध होय है। इहाँ ऐसा जानना जो कर्म्म बंध स्थिति अनुभाग लियें अपने फल देनेंकू समर्थ होय ऐसा कर्म्म बन्ध है सो क्रोधादि कषायनितैं मिल्या मिथ्यात्व सहित तथा मिथ्यात्व रहित केवल कषाय सहित अज्ञानतातैं होय है बहुरि जामें क्रोधादि कषाय तथा मिथ्यात्व न मिले ऐसाअज्ञान यथाख्यात चारित्र वाले मुनिनकैं है। तिसतैं स्थिति अनुभाग रूप बन्ध नाहीं होय है। ऐसैं ही स्तोक

१ अष्ट सहस्रीमें इसप्रकार पाठ है 'ज्ञानान्मोहिनो बन्धो न ज्ञानाद् वीतमोहतः। ज्ञानस्तोकाच्च मोक्षः स्यादमोहान्मोहिनान्यथा,।

ज्ञानमें जानना । केवल ज्ञान अपेक्षा स्तोक ज्ञान छद्मस्थका कहिये तामें मोह सहिततैं बंध होय मोह रहित तैं मोक्ष होय ऐसैं जानना । यहाँ भी सप्त भंगा प्रक्रिया पूर्ववत जोड़णी अज्ञानतैं कथंचित बंध है, बहुरि कथंचित मोह रहित अज्ञानतैं बंध नाहीं है, बहुरि मोहरहित स्तोक ज्ञानतैं मोक्ष है मोह सहित स्तोक ज्ञानतैं बंध है, कथंचित् उभय है कथंचित् अवक्तव्य है कथंचित् अज्ञानतैं बंध अवक्तव्य है कथंचित् अज्ञानतैं बंध नाहीं अवक्तव्य है, कथंचित् उभय अवक्तव्य है । ऐसैं इहाँ ताईं सर्वथा एकान्त वादी अर आप्तका अभिमानतैं दग्ध तिनके मत इष्ट तत्वमें बाधा दिखाई । अर अनेकान्त निर्बाध दिखाया ताकी दश पक्ष वर्णन करी । सत् असत्, एक अनेक, नित्य अनित्य, भेद अभेद, अपेक्षा अनपेक्षा, हेतु आगम, अंतरंग बहिरंगत्व, दैवसिद्धि पौरुषसिद्ध, पुण्यपापकाबंध, अज्ञानतैंबंध स्तोक ज्ञानतैं मोक्ष, ऐसैं दश पक्षका विधि निषेधतैं साधि सात सात भंग करि सत्तरि भंगका एकांत निषेध्या स्याद्वाद साध्या ॥ ९८ ॥

कारिका अठाणवै भई ।

आगे पूछै है जो काम आदि दोष स्वरूप जे मोहकी प्रकृति तिन करि सह चरित जो अज्ञान तातैं प्राणीन कै शुभ अशुभ फलका भोगनेका कारण जो पुण्य पाप कर्म तिनतैं बंध कह्या सो तो होहू परंतु सो यह कामादिकका उपजना है सो ईश्वर है निमित्त जाकूं ऐसा है ऐसैं पूछैं इस आशंका कूं दूर करनेकूँ आचार्य कहैं हैं ।

कामादिप्रभवश्चित्र , कर्मबन्धानुरूपतः ।
तच्चकर्म स्वहेतुभ्यो जीवास्ते शुद्ध्यशुद्धितः ॥ ९९ ॥

अर्थ—कामादिप्रभव कहिये काम क्रोध मान माया लोभ आदिका प्रभव कहिये उत्पत्ति जामें होय हैं । ऐसा भाव संसार है । सो चित्र

कहिये अनेक प्रकार है जातें यामैं सुख दुख आदिक देशकालके भेद करि कार्य अनेक प्रकार होय हैं सो यह (कामादिप्रभव) विचित्ररूप संसार है। सो कर्म बंधके अनुरूप होय है। जैसा कर्म पूर्वे बांध्या था ताकै उदयके अनुसार होय है। बहुरि सो कर्म पूर्वे बांध्या था सो अपने कारण-निर्तें बांध्या था बहुरि ते कारण जीव है। बहुरि ते जीव शुद्धि अशुद्धि के भेद तैं दोय प्रकार है। ऐसैं संसारकी उत्पत्तिका क्रम है। यहां ईश्वरवादी कहै जो कामादिकका प्रभव है। सो ईश्वरके किये होय हैं। ताकू कहिये जो ईश्वर तो नित्य है एक स्वाभावरूप है। बहुरि ताकी इच्छा भी एक स्वभाव है। बहुरि ताका ज्ञान भी एक स्वभाव है। अर ये संसारमें कार्य्य हैं ते अनेक स्वभाव रूप हैं। सो एक स्वभाव होय सो अनेक स्वभाव रूप कार्य्य निकू कैसें करै जो करै तो कार्यनिकी ज्यों ईश्वर के तथा इच्छा कै स्वभाव कैं तथा ज्ञान कैं अनित्य पणा अर अनेक स्वभाव पणा आवै सो ऐसा ईश्वर मान्या नाहीं तथा सिद्ध होय नाहीं बहुरि जीवन कै शुद्ध अशुद्ध भेद करने तैं केईके मुक्ति होय है कोईके संसार ही है। ऐसा सिद्ध होय है बहुरि ईश्वर वादकी चरचा विशेष है सो अष्ट सहस्री तैं जाननी ॥९९॥

आगैं पूछै हैं जो जीवनके शुद्धि अशुद्धि कही तिनका स्वरूप कहा है ऐसैं पूछैं। आचार्य कहै हैं।

> शुद्ध्यशुद्धी पुनः शक्ती ते पाक्यापाक्यशक्तिवत्।
> साद्यनादी तयोर्व्यक्ती स्वभावोऽतर्कगोचरः ॥ १०० ॥

अर्थ—पुन कहिये बहुरि ते पूर्वोक्त शुद्धि अशुद्धि दोऊ हैं ते शक्ति हैं। योग्यता अयोग्यता है ते सुनिश्चितअसंभव-द्बाधक प्रमाणतैं निश्चित करी हुई संभवै हैं जैसे माष—उड़द मूंग धान्य है तिनमें पाक्यापाक्य कहिए पचनें पचावनें योग्य अर न पचने

पचावने योग्य शक्ति है सो स्वयमेव है तैसें है। बहुरि तिन दोऊनिकी व्यक्ति है प्रगट होना है सो सादि कहिए काल अपेक्षा आदिसहित है तथा अनादि कहिये आदि रहित है। बहुरि यहाँ पूछें जो सादि अनादिका हेतु है तहाँ ऐसा उत्तर जो यह वस्तुका स्वभाव है सो यह तर्कके गोचरनाहीं। वस्तु स्वभावमें हेतुका पूछना नाहीं ऐसें कारकाका अर्थ है। यहाँटाकामें ऐसा अर्थ है। जो जीवनके भव्यपणा है सो तौ शुद्धि शक्ति है। सो तौ सम्यग्दर्शन आदि की प्राप्तितैं निश्चयकीजिये हैं। बहुरि अशुद्धिशक्ति अभव्यपणा है। सो सम्यग्दर्शनादिककी प्राप्ति रहित है सो यह प्रत्यक्ष तो सर्वज्ञ जाने हैं। अर छद्मस्थ आगमतैं जाने हैं बहुरि तिनकी व्यक्ति होय है। सो भव्य जीवके तौ शुद्धिकी व्यक्ति सादि है। जातैं याके सम्यग्दर्शन आदिक आदिसहित प्रगट होय हैं। बहुरि अभव्यजीवकै अशुद्धि का व्यक्ति अनादि ही है।

जातैं याकैं मिथ्यादर्शन आदिक अनादिहीके हैं। बहुरि इस शक्तिकी व्यक्तिका ऐसा भी व्याख्यान है। जो जीवनके अभीप्रायके भेदतैं शुद्धिअशुद्धि है। तहाँ सम्यग्दर्शनादि परिणाम स्वरूप अभिप्राय तो शुद्धि है। अर मिथ्यादर्शन परिणाम स्वरूप अभिप्राय अशुद्धि है। इनकी व्यक्ति भव्यजीवनहीके सादि अनादि है। तहाँ सम्यग्दर्शनादिक न उपजै तैतैं अशुद्धिकी व्यक्ति अनादि कहिए बहुरि सम्यग्दर्शनादि स्वरूप शुद्धिकी व्यक्ति सादि कहिये ऐसे जानना। बहुरि कोई पूछे जो इहा स्वभावमें तर्क न करना कह्या। सो प्रत्यक्ष प्रतीतिमें आया पदार्थका स्वभावमें तर्क न करना है। अर जो परोक्ष होय तामें तो तर्क किया चाहिये ताका उत्तर ऐसा जो अनुमान कर प्रतीतिमें आया अर्थमें भी तर्क न करना। अर सिद्ध प्रमाण आगम गोचर जो जीवका स्वभाव है। तामें भी तर्क न करना तातैं यह कहना भले प्रकार बण्या

जो द्रव्यादि ससार है कारण जाकूं ऐसा कामादि प्रभव रूप भाव ससारकै कर्म वधकै अनुरूप पणा हो तैं जानिनकैं शुद्धि अशुद्धिका विचित्र पणातैं युक्ति होना न होना है ॥ १०० ॥

आगै मानू भगवान पूछा जो हे समंतभद्र । सर्वज्ञ पणा आदिक उपेय तत्व बहुरि ताके उपाय तत्व जो ज्ञायक कहिये जनावनेवाला हेतुवाद अहेतुवाद अर कारकतत्व देव पौरुष इनका अधिगमन कहिये जानना समस्त पणें तो प्रमाण करि अर एक देशपणे नयन करि करणा कह्या है । जातें प्रमाण नयबिना अन्य प्रकार इनका जानना न होय है यह नियम कह्या है । तातैं प्रथमही प्रमाणकू कहे ना जातें याके स्वरूप संख्या विषय फल इन चारनिके विषैं विप्रतिपत्ती है ।—अन्यवादी अनेक प्रकार इनकू कहै अन्यथा माने है । तिनका निराकरण विना प्रमाणका निश्चय न होय । ऐसैं पूछैं मानू आचार्य्य कहें हैं ।

तत्वज्ञान प्रमाण ते, युगपत्सर्वभासनम् ।
क्रमभावि च यज्ज्ञान, स्याद्वादनयसस्कृतम्॥ १०१ ॥

अर्थ—हे भगवन् ते कहिये तुमारे मतमें तत्व ज्ञान है सो प्रमाण है । यह तौ प्रमाणका स्वरूप कहा। कैसा हे तुम्हारा तत्वज्ञान युगपत् सर्वभासन कहिय एकैं काल सर्वपदार्थनिका है प्रतिभासन जामैं ऐसा केवलज्ञान है बहुरि जो ज्ञान क्रम भावी है सो भी प्रमाण है जातैं यहभी तत्व ज्ञान है। ऐसा मति श्रुति अवधि मन पर्यय ये चार ज्ञान है। बहुरि कैसा हेतु होय तातैं स्याद्वाद नय करि सस्कृत है । जो सर्वथा एकात कहिए तौ बाधा सहित होय । तातैं स्याद्वादतैं सिद्धक्रिया निर्बाध है । ऐसे युगपत सर्वभासन अर क्रमभावी कहनेमैं प्रत्यक्ष परोक्ष रूप सख्या कही । बहुरि सर्वभासन अर क्रमरूप भासन ऐसें कहनेतैं विषय जनाया । ऐसें कारिका का अर्थ प्रमाण

पचावने योग्य शक्ति है सो स्वयमेव है तैसें है। बहुरि तिन दोऊनिकी व्यक्ति है प्रगट होना है सो सादि कहिए काल अपेक्षा आदिसहित है तथा अनादि कहिये आदि रहित है। बहुरि यहाँ पूछें जो सादि अनादिकाहेतें है तहाँ ऐसा उत्तर जो यह वस्तुका स्वभाव है सो यह तर्कके गोचरनाहीं। वस्तु स्वभावमें हेतुका पूछना नाहीं ऐसें कारकाका अर्थ है। यहाँटाकामें ऐसा अर्थ है। जोजीवनकै भव्यपणा है सो तो शुद्धि शक्ति है। सो तो सम्यग्दर्शन आदि की प्राप्तितें निश्चयकीजिये हैं। बहुरि अशुद्धिशक्ति अभव्यपणा है। सो सम्यग्दर्शनादिककी प्राप्ति रहित है सो यह प्रत्यक्ष तो सर्वज्ञ जानै हैं। अर छद्मस्थ आगमतें जानै हैं बहुरि तिनकी व्यक्ति होय है। सो भव्य जीवकै तो शुद्धिकी व्यक्ति सादि है। जातें याके सम्यग्दर्शन आदिक आदिसहित प्रगट होय हैं। बहुरि अभव्यजीवकै अशुद्धि की व्यक्ति अनादि ही है।

जातें याकै मिथ्यादर्शन आदिक अनादिहीके हैं। बहुरि इस शक्तिकी व्यक्तिका ऐसा भी व्याख्यान है। जो जीवनकै अभीप्रायके भेदतें शुद्धिअशुद्धि है। तहाँ सम्यग्दर्शनादि परिणाम स्वरूप अभिप्राय सो शुद्धि है। अर मिथ्यादर्शन परिणाम स्वरूप अभिप्राय अशुद्धि है। इनकी व्यक्ति भव्यजीवनहीकै सादि अनादि है। तहाँ सम्यग्दर्शनादिक न उपजै तेतैं अशुद्धिकी व्यक्ति अनादि कहिए बहुरि सम्यग्दर्शनादि स्वरूप शुद्धिकी व्यक्ति सादि कहिये ऐसे जानना। बहुरि कोई पूछे जो इहा स्वभावमें तर्क न करना कह्या। सो प्रत्यक्ष प्रीतिमें आया पदार्थका स्वभावमें तर्क न कह्या है। अर जो परोक्ष होय तामें तो तर्क किया चाहिये ताका उत्तर ऐसा जो अनुमान कर प्रतीतिमें आया अर्थमें भी तर्क न करना। अर सिद्ध प्रमाण आगम गोचर जो जीवका स्वभाव है। तामें भी तर्क न करना तातें यह कहना भले प्रकार वण्या

जो द्रव्यादि ससार है कारण जाकूँ ऐसा कामादि प्रभव रूप मात्र ससारकै कर्म वधकै अनुरूप पणा हो तैं जीविनकैं शुद्धि अशुद्धिका विचित्र पणातैं युक्ति होना न होना है॥ १०० ॥

आगै मानू भगवान पूछा जो हे समतभद्र। सर्वज्ञ पणा आदिक उपेय तत्व बहुरि ताके उपाय तत्व जो ज्ञायक कहिये जनावनेवाला हेतुवाद अहेतुवाद अर कारकतत्व दैव पौरुष इनका अधिगमन कहिये जानना समस्त पणें तो प्रमाण करि अर एक देशपणे नयन करि करणा कह्या है। जातैं प्रमाण नयविना अन्य प्रकार इनका जानना न होय है यह नियम कह्या है। तातैं प्रथमही प्रमाणकूं कहें ना जातैं याके स्वरूप सख्या विषय फल इन चारनिके विषैं विप्रतिपत्ती है।—अन्यवादी अनेक प्रकार इनकूं कहै अन्यथा माने है। तिनका निराकरण विना प्रमाणका निश्चय न होय। ऐसैं पूछैं मानू आचार्य्य कहें हैं।

तत्वज्ञान प्रमाण ते, युगपत्सर्वभासनम्।
क्रमभानि च यज्ज्ञान, स्याद्वादनयसस्कृतम्॥ १०१ ॥

अर्थ—हे भगवन् ते कहिये तुमारे मतमें तत्व ज्ञान है सो प्रमाण है। यह तौ प्रमाणका स्वरूप कहा। कैसा है तुम्हारा तत्वज्ञान युगपत् सर्वभासन कहिये एकै काल सर्वपदार्थनिका है प्रतिभासन जामै ऐसा केवलज्ञान है बहुरि जो ज्ञान क्रम भावी है सो भी प्रमाण है जातैं यहभी तत्व ज्ञान है। ऐसा मति श्रुति अवधि मन पर्यय ये चार ज्ञान है। बहुरि कैसा हेतु होय तातैं स्याद्वाद नय करि सस्कृत है। जो सर्वथा एकात कहिए तौ बाधा सहित होय। तातैं स्याद्वादतै सिद्धकिया निर्बाध है। ऐसे युगपत सर्वभासन अर क्रमभावी कहनेमें प्रत्यक्ष परोक्ष रूप सख्या कही। बहुरि सर्वभासन अर क्रमरूप भासन ऐसें कहनेंतैं विषय जनाया। ऐसें कारिका का अर्थ प्रमाण

का स्वरूप संशय विपय अनध्यवसाय रहित स्वरूप है तहाँ ऐसा जानना जो तत्व ज्ञान कहनेतैं अज्ञानकै तथा निराकार दर्शनकै तथा इन्द्रिय और विपय कै भिडने रूप सन्निकर्षकै तथा इन्द्रियकी प्रवृत्ति मात्र कैं प्रमाण पणाँका निराकरण भया। यह प्रमिति प्रति करण नाहीं तातैं प्रमाण नाहीं। यहाँ कोई पूछै तब ज्ञानकू सर्वथा प्रमाणता कहतें अनेकान्तमें विरोध आवै है ताकों कहिये यह बुद्धि है सो अनेकान्त स्वरूप है। जिस आकारतैं तत्वज्ञानरूप है तिस आकारतैं प्रमाण है। अर जिस आकारतैं मिथ्याज्ञान स्वरूप है तिस आकरतैं अप्रमाण है। ऐसैं बुद्धि प्रमाण अप्रमाण स्वरूप होतैं अनेकान्तमें विरोध नाहीं है। जैसैं निर्दोष नेत्रवाला चन्द्रमा सूर्यको लगते कू देखैं। तब पृथ्वी सू लग्या हुवा दीखै सो चन्द्र सूर्य पणाकी अपेक्षातो यह देखना प्रमाण है बहुरि पृथ्वीसो लगा देखना अप्रमाण है। बहुरि तैसैं ही दोष सहित नेत्रवालाकू एक चन्द्रमाका दोय चन्द्रमादीखै सो चन्द्रमा देखनातो प्रमाण है। अर दोय चन्द्रमा देखना अप्रमाण है ऐसैं एकही बुद्धिमें अपेक्षा निरखातैं प्रमाण अप्रमाणपणा सभव है। बहुरि इहाँ कोई पूछै प्रमाण अप्रमाणका नामका नियमरा व्यवहार कैसैं ठहरै ताकू कहिये बधते घटतेकी अपेक्षा प्रधान गौण कर नामका व्यवहार चलै है। जैसैं किस्तुरी आदिकमें सुगध बहुत देखि ताकू व्यवहारमें सुगध द्रव्य कहिये एसे गधकी प्रधानता करि कह्या। यद्यपि यामें स्पर्श आदि भी हैं—तथापि तिनकी गौणता है। ऐसे नामका व्यवहार है। ऐसे तत्वज्ञान प्रमाणका स्वरूप कह्या। बहुरि साथा प्रत्यक्ष परोक्षके भेद करि दोइ कहीं तहां प्रत्यक्षके भेद दोय। तहाँ व्यवहार प्रत्यक्षतो इन्द्रिय बुद्धिइन्द्रिय करि विषयको साक्षात् जानना बहुरि परमार्थ प्रत्यक्ष सकल प्रत्यक्ष तो केवलज्ञान अर विकल प्रत्यक्ष अवधि मन पर्ययज्ञान ऐसैं

प्रत्यक्ष प्रमाण है। याका लक्षण समान्य स्पष्ट विशेषनि सहित वस्तुका जानना है। बहुरि परोक्षका लक्षण सामान्य अस्पष्ट व्यवधान-सहित जानना ताके भेद पाच। स्मृति प्रत्यभिज्ञान तर्क अनुमान आगम ऐसैं। इनका लक्षण ऐसा जो पूर्वें अनुभवमें धारणमें आया।—वस्तुका स्मरण होना याद आवना सो स्मृति है। बहुरि वर्तमानमें अनुभवमें आया। अर पूर्वलेका यादि आवना दोऊनितैं एकपणा अर सदृशपणा आदिकका जोड़रूप ज्ञान होना सो प्रत्यभिज्ञान है। बहुरि साध्य साधनके व्याप्ति जो अविनाभाव ताकूं जानैं सो तर्क है। बहुरि साधनतैं साध्य पदार्थका ज्ञान होना सो अनुमान है ताके भेद दोय हैं स्वार्थनुमान परार्थानुमान ऐसैं तहाँ साधनतैं साध्यका आपही निश्चय करि जानैं सो स्वार्थनुमान है। बहुरि परके उपदेशतैं निश्चयकरि जानैं सो परार्थानुमान है। ताके पाच अवयव हैं। प्रतिज्ञा हेतु उदाहरण उपनय निगमन तहाँ साध्य अर साध्यका आश्रय दोऊनिकूं पक्ष कहिये। ऐसे पक्षके वचनिकूं प्रतिज्ञा कहिये तहाँ साध्यका स्वरूपतो शक्य अभिप्रेत अप्रसिद्ध ऐसे तीनस्वरूप है। अर साध्यका आश्रय प्रत्यक्षादिक करि प्रसिद्ध होय है। बहुरि साध्य तैं अविनाभाव व्याप्ति जाकैं होय ऐसा साधनका स्वरूप है। ताका वचन कूं हेतु कहिये। बहुरि पक्ष सारखा तथा विलक्षण अन्यठिकाणा होय ताकूं दृष्टांत कहिए हैं। ताका बचन कू उदाहरण कहिए है। सो पक्ष सारखाकूं अन्वयी कहिए। विपरीत कूं व्यतिरेक कहिए। बहुरि दृष्टांतकी अपेक्षा ले अर पक्षकू सामान करि कहै सो उपनय है। बहुरि हेतु पूर्वक पक्षका नियम करि कहना निगमन है। इनका उदाहरण ऐसा यह पर्वत अग्निमान है। यहतो प्रतिज्ञा बहुरि जात यह धूमवान है यह हेतु बहुरि जो धूमवान है सो अग्निमान है जैसे रसोई घर यह अन्वय दृष्टान्त। बहुरि जो धमवान नाहीं तो अग्निमान नाहीं।

जैसे जलका निवान यह व्यतिरेक दृष्टान्त यह उदाहरण । बहुरि जैसें यह धूमवान पर्वत है यह उपनय। बहुरि तातैं यह अग्निमान है यह निगमन ऐसे पांच प्रयोगका परार्थानुमान हैं। बहुरि आप्त जो सर्वज्ञ आदि जो साचा वक्ता ताके वचनतैं वस्तु निश्चयकीजिये सो आगम प्रमाण है। ऐसें प्रमाणकी संख्या है। अन्यवादी स्मृति प्रत्यभिज्ञान तर्ककूं प्रमाण नैं मानि सँख्याका नियम थापें हैं। तिनका नियम स्मृति आदि प्रमाण बिगाड़ै हैं। बहुरि प्रमाणका विषय सामान्य विशेष स्वरूप वस्तु है। सोही निर्बाध सिद्ध होय है। अन्यवादी सामान्यहीकूं तथा विशेष ही कू तथा दोऊंकू परस्पर अपेक्षा रहित प्रमाणका विषय थापैं हैं सो निर्बाध सिद्धि होय नाहीं है। बहुरि तत्वज्ञान स्याद्वादनय करि संस्कृत है तहाँ ऐसे जानना जो तत्त्वज्ञान है सो कथंचित् युगपत् प्रतिभास स्वरूप है। जातैं सकल विषय स्वरूप है। अर कथंचित् क्रमभावी है। जातैं जाका क्रमरूप विषय है। इत्यादि सप्त भंग जोडना अथवा न्यारे न्यारे भेदनि प्रति लगावणा। जैसें तत्वज्ञान है सो कथंचित् प्रमाण है। अपना प्रमिति प्रति साधकतम करण है। बहुरि कथंचित् अप्रमाण है जातैं अन्य प्रमाणके भेद अपेक्षा प्रमेय है अथवा आपके आप प्रमेय है। इत्यादि सप्तभंगी जोड़नी बहुरि प्रमाणकी विशेष चरचा अष्ट सहस्री टीका तैं तथा श्लोकवार्तिक तत्वार्थ सूत्रकी टीका तैं तथा परीक्षामुख ग्रन्थ तैं जाननी ॥ १०१ ॥

आगैं प्रमाणका फलका स्वरूप कहै हैं। जातैं अन्यवादी फलका स्वरूप अन्यप्रकार मानैं हैं ताका निराकरण होय।

> उपेक्षाफलमाद्यस्य, शेषस्यादानहानधी ।
> पूर्वं[1] वा ज्ञान नाशो वा सर्वस्यास्य स्वगोचरे ॥ १०२ ॥

१ सनातन जैन ग्रन्थ-मालाकी मुद्रित आप्तमीमांसामें 'पूर्वा' पाठ मुख्य है।

अर्थ—आद्यस्य कहिए कारिकामें युगपत्सर्वभासनें ऐसा पहले कह्या है। सो केवलज्ञान आद्य लेना तिसका भिन्न फल तो उपेक्षा कहिए उदासीनता वीतरागता है। जातैं केवलीनिकै सर्व प्रयोजन सिद्ध भया संसार अर संसारका कारण हेय था ताका अभाव भया अर मोक्षका कारण उपादेय था ताकी प्राप्ति भई। अब किछू प्रयोजन न रहा—तातैं वीतरागता है। इहां कोई पूछें केवली वीतराग के प्राणीनिकै हितोपदेश रूप वचन करुणा विना कैसे प्रवर्त्तै है। ताकूं कहिए तिनकै घाति कर्मका नाश भया तातैं मोहका विशेष जो करुणा सो तो नाहीं है। अर अंतरायके नाशतें सर्व प्राणनिकूं अभयदान दनें स्वरूप आत्माका स्वभाव है सो प्रगट भया है सो ही परमदया है। सो ही मोहके अभावतें उपेक्षा है। बहुरि उपदेशरूप वचन है सो तीर्थंकरपणानामा नाम कर्म की प्रकृतिकै उदयतैं विना इच्छा स्वयमेव प्रवर्त्ते है। तिनतैं सर्व प्राणीनिकै हितहोय है। बहुरि केवल ज्ञान प्रमाणका अभिन्न फल अज्ञानका अभाव है। बहुरि शेष कहिए मति आदि ज्ञानरूपप्रमाण ताका फल साक्षात्तो अपनेविषय विषैं अज्ञानका अभाव है। सो तिनतैं अभिन्न है बहुरि परंपरा करि हेयका त्याग उपादेयका ग्रहणका ज्ञान होना फल है तथा पूर्वो कहिये उपेक्षा भी है ते तिनतैं भिन्न हैं ऐसे कथंचित् फल अभिन्न कथंचित् भिन्न है। यातैं एकान्तका निराकरण है॥ १०२॥

आगैं पूछै हैं जो प्रमाणका फल स्याद्वाद्नय संस्कृत कह्या सो स्याद्वादकास्वरूप कहा है। ऐसै पूछें आचार्य कहैं हैं।

> वाक्येष्वनेकान्तद्योती गम्यं प्रति विशेषणम्[1]।
> स्यान्निपातोऽर्थयोगित्वात् तव केवलिनामपि॥ १०३॥

---

१ 'विशेषक' यह पाठ सनातन जैन ग्रंथ मालाकी वसुनंदि सैद्धान्तिक मुद्रित आप्तमीमांसावृत्तिमें मुख्य है लिखित भाषा आप्तमीमांसामें तथा मुद्रित अष्टसहस्रीमें 'विशेषण' यही पाठ मुख्य है।

हे भगवन् ? स्यात् ऐसा शब्द है। सो निपात है । अव्यय है। वाक्यनिविषैं अनेकान्तका द्योति कहिए प्रकाशने वाला है । बहुरि गम्य कहिए साधने योग्य जानने योग्य पदार्थ है ताप्रति विशेषण है। जातैं याकैं अर्थका योगीपणा है अर्थतैं सबंध है । यातैं तुमारे मतमें कथनिकै भी यह है तहाँ कोई पूछें वाक्य कहा ताका समाधान जे वर्णस्वरूप पद हैं । तिनकैं परस्पर अपेक्षारूपनिकै निरपेक्ष समुदाय होय सो वाक्य है । अन्यवादी तो वाक्यका स्वरूप अनेकप्रकार अन्यथा कहैं हैं। सो निर्बाध नाहीं ते दसप्रकार वाक्यतो यह कहैं हैं । तिनके नाम आख्याशब्द १ संघात २ तामें बस पसीजाति ३ एक अनयव रहित शब्द ४ क्रम ५ बुद्धि ६ अनुसहृति ७ आद्यपद ८ अंतपद ९ सापेक्षपद १० ऐसें इत्यादि अनेकप्रकार कह है। तिनमें बाधाआवे है। स्याद्वादकरि सिद्ध वाक्यका स्वरूप कह्या सोही निर्बाध है । बहुरि पूछै, अनेकान्त कहा ? ताका समाधान—सत् असत् नित्य अनित्य एक अनेक इत्यादि सर्वथा एकांतका निराकरण अनेकात है । सो इन सत् आदिके लगाया स्यात् शब्द है सो तिसका विशेषण पणा करि तिसकूँ तत्सका अवयव पणा करि ताका द्योतक होय है । जातैं निपात शब्दनिकू द्योतक भी कहिऐ हैं। बहुरि यह स्यात् निपात स्याद्वादका वाचक भी है । बहुरि (वाक्य) द्योतक पक्षनिमें भी गम्य कहिए जानने योग्य अर्थ प्रति विशेषण होय है। बहुरि स्यात् शब्द सर्वही वाक्यनि प्रति लगावणा जातैं सर्व अर्थकूँ एकही शब्द कहै नाहीं वाक्य क्रमसौं

---

१ आख्यातशब्द संघाता, जाति संघातवर्तिनी एकोनवयव शब्द क्रमो बुद्धयनुसंहृती ॥ १ ॥ पदमाद्य पद चान्त्य पद सापेक्षमित्यपि। वाक्य प्रति मतिभिन्ना बहुधा न्यायवेदिनाम् ॥ २ ॥

प्रवर्ते है। तातैं जिस वाक्य कै जो गम्य अर्थ। ताहीका द्योतक होय है। जो स्यात् शब्द न लगाइये तो अनेकान्त अर्थ जान्या जाय नाहीं ऐसैं जानना ॥ १०३ ॥

आगैं पूछैं हैं जो कथंचित् आदि शब्दतैं भी तौ अनेकान्त अर्थका जानना होय है। आचार्य कहै हैं—यह सत्य है। होय है यह कथंचित् शब्द भी तिस स्यात् शब्दका पर्य्याय शब्द है। सोही स्याद्वाद दिखावैं हैं।

स्याद्वादः सर्वथैकान्तत्यागात्किंवृत्तचिद्विधिः ।
सप्तभंगनयापेक्षो हेयादेयविशेषकः ॥ १०४ ॥

अर्थ—स्याद्वाद कहिए स्यात् शब्द है सो सर्वथा एकान्तका त्यागतैं कथंचित्। ऐसा याका पर्य्याय शब्द है। जातैं किं शब्दका रूप निपजाय चित् प्रत्ययका विधान किया है तब कथंचित् ऐसा भया है। बहुरि कैसा है। सप्तभंगरूपनयनकी है अपेक्षा जाकै। बहुरि कैसाहै हेय अर उपादेय जो अर्थ ताका विशेषकहै भेद करनेवाला है। इहाँ ऐसा जनना जो यह स्याद्वाद है। सो अनेकान्त वस्तु कूँ अभिप्रायरूप अपणा विषयकरि सप्तभंग नयकी अपेक्षाले अर स्वभाव अर परभावकरि सत् असत् आदि की व्यवस्था कूँ प्रतिपादनकरै है। तहाँ सप्तभंग नयतौ पूर्वै कहे ते जानू।—बहुरि नय है ते द्रव्यार्थिक पर्य्यायार्थिक इन दोयके भेद नैगम आदिक हैं तहाँ नैगम संग्रह व्यवहार ये तीनतौ द्रव्यार्थिकके भेद हैं ऋजुसूत्र शब्द समभिरूढ एवंभूत ये चारि पर्यायार्थिकके भेद हैं बहुरि इन सातनिमैं नैगम संग्रह व्यवहार ऋजुसूत्र ये च्यार तौ अर्थ प्रधान है। बहुरि शब्द समभिरूढ एवंभूत ये तीन शब्द प्रधान हैं। बहुरि नैगम नयके तीन भेद हैं। दोय द्रव्य कूँ प्रधान गौण करि प्रवर्तै

दोय पर्याय कूं प्रधान गौण करि प्रवर्ते। द्रव्य अर पर्यायकूं प्रधान गौण करि प्रवर्त ऐसैं तीन। तहां दोय शुद्ध द्रव्यकूं प्रधान गौण करि प्रवर्त। तथा एक शुद्ध एक अशुद्धि ऐसैं दोयद्रव्य कूं प्रधान गौण करि प्रवर्त। ऐसे द्रव्य नैगम दोय प्रकार बहुरि पर्याय नैगम तीन प्रकार दोय अर्थ पर्याय दोय व्यजन पर्याय एक अर्थ पर्याय एक व्यजन पर्याय इनकूं प्रधान गौण करि प्रवर्तै तहाँ प्रधान अर्थ पर्याय तीन प्रकार ज्ञानार्थ पर्याय ज्ञेयार्थ पर्याय ज्ञानज्ञेयार्थ पर्याय ऐसे व्यजन पर्याय नैगम छह प्रकार शब्द व्यजन पर्याय, समभिरूढ व्यजन पर्याय, एवभूत व्यजन पर्याय, शद्व समभिरूढ व्यजन पर्याय, शद्व एवभूत व्यंजन पर्याय, समभिरूढ एवभूत व्यजन पर्याय, ऐसैं बहुरि अर्थ व्यजन पर्याय नैगम तीन प्रकार है। ऋजुसूत्रशब्द, ऋजुसूत्रसमभिरूढ, ऋजुसूत्रएवभूत। ऐसैं बहुरि द्रव्यपर्यायनैगम आठ प्रकार है। शुद्धद्रव्यऋजुसूत्रार्थपर्याय शुद्धद्रव्यशद्व, शुद्धद्रव्यसमभिरूढ, शुद्धद्रव्यएवंभूत। अशुद्धद्रव्यऋजुसूत्र, अशुद्धद्रव्यसमभिरूढ, अशुद्धद्रव्यशब्द, अशुद्धद्रव्यएवभूत ऐसे बहुरि शब्दनयके काल कारक लिंग सख्या साधन उपग्रह भेदतैं भेद है तैं मुख्य गौण करि प्रवर्तें इत्यादि नय, जे ते वचनके भेद हैं ते ते ही नय हैं॥ तिनके मुख्य गौण करि विधिनिषेधतैं सात सात भंग करि प्रवर्तें हैं। सो ऐसें नयनिकी अपेक्षा ले स्याद्वाद प्रवर्तें है। सो हेय उपादेय तत्व कूं जनावै है॥ १०४॥

आगे कहै है। जो ऐसा यह स्याद्वाद है। सो केवल ज्ञानकी ज्यों सर्व तत्त्व प्रकाशक है। सो ही दिखावैं हैं।

स्याद्वादकेवलज्ञाने सर्वतत्त्वप्रकाशने।
भेदः साक्षादसाक्षाच्च, ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत्॥ १०५॥

अर्थ—स्याद्वाद और केवलज्ञान ये दोउ हैं ते कैसे हैं सर्व तत्वका प्रकाशन जिनकैं ऐसें है। बहुरि इनमें साक्षात् कहिए प्रत्यक्ष अर असाक्षात् कहिए परोक्ष ऐसें जाननेहीका भेद है बहुरि इनमें एकही कहिये अर एक न कहिये ऐसें अन्यतम होय तौ अवस्तु होय। इहाँ ऐसा जानना जो ज्ञान प्रत्यक्ष परोक्ष ऐसें दोय हि प्रकार हैं। इन सिवाय अन्य कोई है नाहीं बहुरि दोउ ही प्रधान हैं। जातैं परस्पर हेतुपणा इनकैं है केवल जानतैं स्याद्वाद प्रवर्तें है। बहुरि केवल ज्ञान अनादि संतानरूप है तोउ स्याद्वाद तैं जाण्याजाय है। बहुरि सर्वतत्त्वके प्रकाशक समान कह्या ताका यहू अभिप्राय है जो जीवादि सात पदार्थ तत्त्व कहे तिनका कहना दोउकैं समान हैं जमैं आगम है सो जीवादिक समस्त तत्व कूं पर कूं प्रतिपादन करै है। तैसे ही केवली भी भाषै है। ऐसै समान हैं। प्रत्यक्ष परोक्ष प्रकाशनेंका ही भेद है। वचनद्वारैं कहनेकी अपेक्षा भी समान हैं। जातैं जिन विशेषनि कू केवली जानै है तिनमें जे वचन अगोचर है। ते कहनेमें आवैं ही नाहीं बहुरि **स्याद्वादनयसंस्कृत तत्वज्ञान** याका व्याख्यान ऐसा जो प्रमाण नयकरि संस्कृत है तहाँ स्याद्वादतौ सप्तभंगी वचनकी निमित्तैं प्रमाण है। बहुरि नैगम आदि बहुत भेदरूप नय है ऐसे संक्षेपतैं कह्या विस्तारतैं अन्य ग्रंथनितैं जानना॥ १०५॥

आगैं अब **तत्वज्ञानप्रमाणस्याद्वादनयसंस्कृत** इनका और प्रकार व्याख्यान करैं हैं। तहाँ स्याद्वादतौ अहेतुवाद आगम है बहुरि नय है सो हेतुवाद है। तिन दोउनकरि संस्कृत है सो ही युक्तिशास्त्र इन दोउन करि अविरुद्ध है। सुनिश्चितासंभवद्बाधक रूप है। ऐसैं अभिप्रायवान आचार्य है ते—स्याद्वाद अहेतुवाद है। सो तो पहले कह ही आये हैं अब हेतुवाद जो नय ताका लक्षण कहैं।

सधर्मणैव साध्यस्य साधर्म्यादविरोधतः ।
स्याद्वादप्रविभक्तार्थविशेषव्यञ्जको नयः ॥ १०६ ॥

अर्थ—जा करि साध्य पदार्थ जानिये सो नय है। सो कैसा है स्याद्वाद जो श्रुतप्रमाण तातैं भेदरूपकिया जो अर्थका विशेष साध्य अभिप्रेत असिद्ध विशेषण विशिष्ट साध्य विवादमें आया ताका व्यञ्जक है। सो कैसैं व्यंजक है साध्य कै समान धर्मरूप जो दृष्टान्त ताही करि साधर्म्य करिए समान धर्मपणातैं व्यंजक है सो अविरोधतैं व्यंजक है साध्यतैं विरुद्ध पक्षके साधर्म्यतैं व्यञ्जक नाहीं है विपक्षतैं तो वे धर्म तैंही अविरोध करिही हेतुकै साध्यका प्रकाशन पणा हैं ऐसैं करने तै ही हेतुका लक्षण अन्यथानुपपन्नपणा होय है। (अन्यप्रकार हेतुका लक्षण कहैं तामैं बाधा है) ऐसैं नय है सो ही हेतु है। बहुरि ऐसे नय सामान्य काभी लक्षण होय है। जातैं स्याद्वाद तैं भेदरूपाकिया जो अर्थ सो प्रधानपणातैं सर्व अगका व्यापने वाला है। ताका विशेष—जो नित्य पणा आदिक ताका न्यारा न्याराका कहने वाला है सो यह नय है ऐसैं नयका समान लक्षण जानना हेतुतैं जो साध्य अभिप्रेतमैं आवै ताही कूं साधै है। बहुरि नय सामान्य है सो सर्व धर्मनिमैं व्यापक है ऐसे अनेक धर्मनि सहित वस्तुका प्रतिपत्ती प्राप्ति ज्ञान सो तो प्रमाण है बहुरि एक धर्मकी प्रतीपत्ती धर्मतैं सापेक्ष प्रतिपत्ति है सो नय है। बहुरि प्रतिपक्षी धर्मका सर्वथा निराकरण सो दुर्नय है ॥ १०२ ॥

आगैं जो प्रमाणका विषय अनेकान्तात्मक वस्तु कह्या सो कैसा है ऐसैं पूछैं आचार्य्य कहैं हैं।

नयोपनयैकान्तानां त्रिकालानां समुच्चयः ।
अविभ्राङ् भावसम्बन्धो द्रव्यमेकमनेकधा ॥ १०७ ॥

१ अविभ्राड् ऐसाभी पाठ है।

अर्थ—तीन काल सम्बन्धी जे नय अर उपनय तिनका एकांत तिनका अविश्वग्भाव स्वरूप जो सम्बन्ध ऐसा समुच्चकहिए समुदाय एकता सो द्रव्य है। सो कैसा है अनेकधा कहिए अनेक प्रकार है । तहाँ नयका स्वरूप तौ पहले कह्या सो है ते द्रव्य पर्य्यायके भेदतैं तथा तिनके उत्तर भेदतैं अनेक हैं। बहुरि तिन नयन की शाखा प्रति शाखा अनेक हैं। ते उपनय हैं। बहुरि एक एक धर्मका ग्रहण करना सो तिनका एकान्त है। तिनका समुच्चय ऐसा जो धर्म अपना आश्रय रूप धर्म्मीकूं छोडि अन्य धर्म्मी में जाना ऐसा अशक्य निवेचनपणा रूप समुदाय सो इहाँ भेदाभेद कथंचित् जानना। सर्वथा भेदाभेद में विरोध है। ऐसे त्रिकालवर्ती नय उपनयका विषयभूत पर्य्यायविशेषनिका समूह द्रव्य है सो एकानेकस्वरूप वस्तु है। ऐसा सम्यक् प्रकार कह्या हुआ वर्णै हैं॥ १०७॥

आगैं परवादीकी आशंका निचारि अर दूर करते संते आचार्य्यकहैं हैं।

मिथ्यासमूहो मिथ्या चेन्न मिथ्यैकान्ततास्ति नः।
निरपेक्षा नयाः मिथ्या सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत्॥ १०८॥

अर्थ—इहाँ अन्यवादी तर्क करै जो तुमने वस्तुका स्वरूप नय और उपनयका एकान्तका समूहकूं द्रव्य करि कह्या सो नयनका एकान्तकूं तौ तुम मिथ्या कहते आये हो सो मिथ्या नयनका समूहभी मिथ्याही हो य ताकूं आचार्य्य कहैं हैं। जो मिथ्या नयनका समूह है सो तौ मिथ्या ही है। बहुरि हमारे जैनीनि कै नयनके समूह हैं सो मिथ्या नाहीं। जातै ऐसा कह्या है। जे परस्पर अपेक्षा रहित नय हैं ते तो मिथ्या हैं। बहुरि जे परस्पर अपेक्षासहित नय हैं। ते वस्तु स्वरूप हैं। ते अर्थ क्रियाकूं करै ऐसा वस्तुकूं साधै हैं निरपेक्षपणा है सो तो प्रतिपक्षी धर्मका सर्वथा निराकरण स्वरूप है। बहुरि प्रतिपक्षी धर्मतैं उपेक्षा

कहिए उदासीनतासों सापेक्षपणा है उपेक्षा न होय। अर प्रतिपक्षी धर्मकू मुख्य करै तो प्रमाण नयनै विशेष न ठहरे हैं प्रमाण नय दुर्न-यका ऐसाही लक्षण वर्णे है। दोउ धर्मका समान ग्रहण सो तो प्रमाण बहुरि प्रतिपक्षी धमतें उपेक्षा सा सुनय बहुरि प्रतिपक्षी धर्मका सर्वथा त्यागसो दुनय ऐसें सर्वका उपसंहार संक्षेप समेटना जानना ॥ १०८॥

आगैं पूछै है जो ऐसे अनेकान्तात्मा अर्थ है तो वचन करि कैसे नियम करि कहिए जातैं प्रतिनियत कहिए न्यारे न्यारे पदार्थनि विषैं लोककी प्रवृत्ति होय ऐसें आशंका होतैं आचार्य कहैं हैं।

नियम्यतेऽर्थो वाक्येन विधिना वारणेन वा।

तथान्यथाच सोऽवश्यमविशेष्यत्वमन्यथा ॥ १०९॥

अर्थ-विध रूप तथा वारण कहिए निषेधरूप ऐसा वाक्य करि अर्थ कहिये पदार्थ सो नियम्यते कहिए नियम रूप करिये हैं। जातैं सो कहिए पदार्थ तथा कहिए तैसा अर अन्यथा कहि अन्यसा ऐसा विधि निषेध रूप अवश्य है। बहुरि ऐसा न मानिए तो अविशेषत्व कहिए पदार्थ के विशेषण योग्यपणा न होय इहाँ ऐसा जानना जो कछु सत् रूप वस्तु है। सो सर्वही अनेकान्त स्वरूप हैं। जाते ऐसाहोय सोही अर्थ क्रियाका करनेवाला होइ। सर्वथा एकान्त स्वरूप तो अवस्तु है। सो अर्थ क्रिया रहित है। यहतो विधि रूपवाक्य है अन्यमती भी सर्व ऐसैंही एकानेक स्वरूप मानैं हैं। परन्तु सर्वथा गोण मुख्य करि एक पक्षकूँ परमार्थ मानि दूजी पक्षका उपचार करि अभिप्राय बिगाडै हैं। अर मानैं ऐसे हैं बौद्ध मती तो एक सवदनकूं चित्राकार मानैं है। नैय्यायिक ईश्वरके ज्ञानकूं अनेकाकार मानैं हैं। सांख्यमती स्वसंवेदनकू बुद्धिमें आया पदार्थकूं जानने वाला मानै है मीमांसक भी फलज्ञानकूं स्वसंवेदमानैं स्वरूप अर अर्थनिका जाननेवाला मानैं हैं चार्वाकमी प्रत्यक्ष ज्ञानकूं

अपना परका जाननेवाला मानैं हैं। ऐसैं एकानेक स्वरूप मानि अर एक पक्षकूं सर्वथा मुख्य गोण करै तब अभिप्राय बिगड्या ही कहिए। ऐसैं तौ यह अनेकान्त स्वरूप वस्तुका विधि वाक्य है। बहुरि तैसैंही निषेध वाक्य है। जो वस्तु तत्त्व है सो किछु भी एकान्त स्वरूप नाहीं है। जातैं सर्वथा एकान्तमें सर्वथा अर्थक्रिया नाहीं हैं। जैसे आकाशके फूलनाहीं है। तातैं अर्थ क्रिया भी नाहीं। ऐसे अन्यवादीनि करि मान्या जो सर्वथा एकान्तनिका मान्यका निषेध है। जातैं सर्वथा एकान्त तो किछू वस्तु नाहीं सो निषेधवे योग्य भी नाहीं अर परवादीनिकी मान्य भावरूप है। ताका निषेध है। ऐसैं विधि प्रतिषेध वाक्य करि वस्तु तत्व नियमरूप कीजिये है। बहुरि तैसैं ही तथा अन्यथाका अवस्यभाव है जो तथा अन्यथा न होय तौ पदार्थ विशेष न ठहरैं प्रतिषेध विना विधि विशेषण नाहीं दोऊ विशेषण विना विशेष पदार्थ नाहीं। इस ही कथन करि विधि प्रतिषेध दोऊको गौण करि सत् असत् आदि वाक्य विषैं कोई वृत्ति जाननी ॥ १०९ ॥

आगैं अन्यवादी कहै जो वाक्य है सो सर्वथा विधिही करि वस्तु तत्वके नियम रूप करै है। ऐसे एकान्त विषैं आचार्य्य दूषणदिखावैं हैं।

तदतद्वस्तुवागेषा तदेवेत्यनुशासती।
न सत्या स्यान्मृषावाक्यैः कथतत्त्वार्थदेशना ॥११०॥

अर्थ—वस्तु है सो तत् अतत् ऐसैं दोऊ रूप है। जातैं यह वाक् कहिए वाणी तत् ही है। ऐसैं कहते कैसे सत्य होय है न होय। बहुरि ऐसैं असत्य वाक्यनि करि तत्वार्थका उपदेश कैसैं प्रवर्त्त असत्य वाक्यकू कौन मानै। यहाँ ऐसा जानना जो वस्तु है सो तौ प्रत्यक्षादि प्रमाणका विषयभूत सत् असत् आदि विरुद्ध धर्मका आधाररूप है सो

अनिरुद्ध है सो अन्यथादि सत् रूपही है तथा असत् रूपही है। ऐसा एकान्त कहैं हैं तौ कहो वस्तु तो ऐसैं है नाहीं वस्तुही अपना स्वरूप अनेकातात्मक आप दिखावै है तौ हम कहा करैं वादी पुकारै है निरुद्ध है रे निरुद्ध है रे तो पुकारो किछू निरर्थक पुकारनमें साध्य है नाहीं। ऐसें तत् अतत् वस्तुकूं तत् ही है—ऐसैं कहती वाणी मिथ्या है। अर मिथ्या वाक्यनिकरि तत्वार्थ का देशना युक्त नाहीं हैं। ऐसा सिद्ध किया ॥ ११० ॥

आगैं वाक्य है सो प्रतिषेध प्रधान करि ही पदार्थ कू नियम रूप करै है। ऐसा एकान्त भी श्रेष्ठ नाहीं। ऐसा कहैं हैं।

वाक्स्वभावोऽन्यथार्थप्रतिषेधनिरंकुश ।
आह च स्वार्थसामान्य तादृग् वाच्य खपुष्पवत् ॥१११॥

अर्थ—वचनका यह स्वभाव है। जो अपना अर्थ सामान्यकू तो कहै है बहुरि अन्य वचनका अर्थका प्रतिषेध अवश्य करै है। तामैं निरंकुश है। बहुरि इहां बौद्धमती कहै, जो अन्य वचनका प्रतिषेध है सो ही वचनका अर्थ निरंकुश होइ स्वार्थ सामान्यतौ कहने मात्र है। किछू वस्तु नाहीं ताकू आचार्य कहै हैं। जो ऐसा वचन तो आकाशके फूलवत् है इहां ऐसा जानना जो वचनके अपना सामान्य अर्थका तौ प्रतिपादन अर अन्य वचनका अर्थका निषेध सिवाय अन्य किछू कहनेंकू है नाहीं दोउनिमैंसू एक न होय तौ वचन कह्या ही न कह्या समान है ताका किछू अर्थ है नाहीं। निश्चयतैं सामान्यतो विशेष विना अर विशेष सामान्य विना कछू दीखै है नाहीं दोऊही वस्तु स्वरूप है। इस सिवाय अन्यापोह कहै तो किछू है नाहीं तत्वकी प्राप्ति विना केवल वचन कष्ट करि आप तथा परकू काहेकू ठिगना ॥ १११ ॥

आगैं कहैं हैं जो विधि एकान्तकी ज्यों निषेध एकान्तका भी निराकरण तो विस्तार करि पहले कह ही आए बहुरि फिर भी निषेधही वचनका अर्थ कहनेवाले वादीकी आशंका दूर करैं हैं,

सामान्यवाग्विशेषे चेन्न शब्दार्थो मृषा हि सा ।
अभिप्रेतविशेषाप्तः स्यात्कार' सत्यलाञ्छनः ॥ ११२ ॥

अर्थ—सामान्य वाणी है सो चेत् कहिए जो विशेष विषैं शब्दार्थ स्वरूप नाहीं है। विशेषकू न जानावै तो ऐसी वाणी मिथ्या ही है। बहुरि अभिप्रेतमें लियाजो विशेष ताकी प्राप्तिका स्यात्कार है। सो सत्यार्थ लक्षण कहिए चिन्ह है। यह चिह्न अभिप्रायमें तिष्ठते विशेष कू जानावै है। यहाँ ऐसा जानना जो बौद्धमती अन्यापोह कहिए अन्यके निषेधमात्र वाक्यका अर्थ कहै है। सो अन्यापोह कुछ वस्तु है नाहीं। वस्तुतो सामान्य विशेषात्मक है। सो सामान्यकू कहै तब विशेष वक्ताके अभिप्रायमें गम्यमान है। ताकू भी कहनेवाला सामान्य वचनही है। जातैं याकै स्यात् पद लागे हैं। सो अभिप्रेत विशेषके जाननेका यह स्यात्कार सत्यार्थ चिह्न है। बहुरि अभावकू तौ कहै। अर भावकू न कहै ऐसा वचनतौ अनुक्त समान है॥ ११२॥

आगैं कहैं हैं जो ऐसा स्याद्वादका निश्चय किया तातैं स्याद्वादही सत्यार्थ है। अन्यवाद सत्यार्थ नाहीं हे। ऐसै भगवान समन्तभद्रस्वामी अतिशयरूप कहैं हैं।

विधेयमीप्सितार्थाङ्ग प्रतिषेध्याविरोधि यत् ।
तथैवादेयहेयत्वमिति स्याद्वादसंस्थितिः ॥११३॥

अर्थ—यथा कहिए जैसें जो प्रतिषेध्य पदार्थ सो अविरोधी विधेय पदार्थ है। सो यह ईप्सितार्थांग कहिए आपकै वांछित अभिप्रेत पदार्थका अंगभूत है तैसें ही आदेय हेयत्व कहिए ग्रहण करने योग्य अर त्याग

करने योग्यपणाभी प्रतिषेध्यतैं अविनाभावी है। ऐसें स्याद्वादकी सम्यक् प्रकार स्थिति है तहां अस्ति इत्यादिक तौ अभिप्रायमें लिया हुआ विधेय है। तहां जो राजाका भय चोरआदिकका भय तैं दुष्ट विधान करे तो ताकू विधेय न कहिए जातैं ताका करनेका अभिप्राय नाहीं। बहुरि अभिप्रायमें भी लिया अर विधान न किया सो भी विधेय न कहिये जातैं तिसमें करनेकी योग्यता नाहीं है विधान न भया बहुरि अभिप्रायमें भी न लिया अर कहनेमें न आया सो किछू विधेय है ही नाहीं, प्रतिषेध्य भी नाहीं तातैं उपेक्षा उदासीनता मात्रही है। बहुरि इन सिवाय अभिप्रायमें लिया अर विधान करै सो विधेय है। सो प्रतिषेध्य जे नास्तित्व आदि तिनतैं अविरुद्ध है। सोही तैसेंही वाञ्छित पदार्थका अंग है। जातैं विधि प्रतिषेधकै परस्पर अविनाभाव लक्षणपणा है। ऐसें विधेय प्रतिषेध्य स्वरूपके विशेषतैं स्याद्वाद प्रक्रिया जोडणी। अस्तित्व आदि-विशेष है। सो अपना स्वरूप करि विधेय है प्रतिषेध्य स्वरूप करि विधेय नाहीं है —ऐसें कथंचित् विधेय है। कथंचित् अविधेय है। ऐसें प्रतिषेध्य पर लगावणा। तैसेंहा जीवादि पदार्थनि पर लगावणा कथंचित् विधेय। कथंचित् प्रतिषेध्य। ऐसें स्याद्वादका सम्यक् स्थिति युक्ति शास्त्रतैं अविरोध सधे है। अर पहलैं भाव एकान्त इत्यादि निर्णैंही विधि प्रतिषेधके विरोध अविरोधका समर्थन किया है। तातैं श्री समंतभद्रआचार्य भगवान प्रति कहैं हैं। जो हे भगवन् हमनैं निर्बाध निश्चय किया है जो युक्तिशास्त्रतैं अविरोधी वचन पणातैं तुम ही निर्दोष हो। अन्य नाहीं हैं तिनके वचन निर्बाध नाहीं हैं॥ ११३॥

अब यह आप्तमीमांसाका प्रारंभ किया था ताका निर्वहण अर आपके ताका फलकों आचार्य प्रकाशैं हैं।

क्र. श्लोक पृष्ठ

अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥
९५ विशुद्धिसंक्लेशाङ्गं चेत् स्वपरस्थं सुखासुखम् ।
पुण्यपापास्रवौ युक्तौ न चेद्व्यर्थस्तवार्हतः ॥

दशम परिच्छेद

९६ अज्ञानाच्चेद्ध्रुवो बन्धो ज्ञेयानन्त्यान्न केवली । ९६
ज्ञानस्तोकाद्विमोक्षश्चेदज्ञानाद्बहुतोऽन्यथा ॥
९७ विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम् । ९६
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥
९८ अज्ञानान्मोहिनो बन्धो नाज्ञानाद्वीतमोहतः । ९७
ज्ञानस्तोकाच्च मोक्षः स्यादमोहान्मोहितोऽन्यथा ॥
९९ कामादिप्रभवश्चित्रः कर्मबन्धानुरूपतः । ९८
तच्च कर्म स्वहेतुभ्यो जीवास्ते शुद्ध्यशुद्धितः ॥
१०० शुद्ध्यशुद्धी पुनः शक्ती ते पाक्यापाक्यशक्तिवत् । ९९
साद्यनादी तयोर्व्यक्ती स्वभावोऽतर्कगोचरः ॥
१०१ तत्त्वज्ञानं प्रमाणं ते युगपत्सर्वभासनम् । १०४
क्रमभावि च यज्ज्ञानं स्याद्वादनयसंस्कृतम् ॥
१०२ उपेक्षा फलमाद्यस्य शेषस्यादानहानधीः । १०४
पूर्वा वा ज्ञाननाशो वा सर्वस्यास्य स्वगोचरे ॥
१०३ वाक्येष्वनेकान्तद्योती गम्यं प्रति विशेषणम् । १०५
स्यान्निपातोऽर्थयोगित्वात्तव केवलिनामपि ॥
१०४ स्याद्वादः सर्वथैकान्तत्यागात्किंवृत्तचिद्विधिः । १०७
सप्तभङ्गनयापेक्षो हेयादेयविशेषकः ॥
१०५ स्याद्वादकेवलज्ञाने सर्वतत्त्वप्रकाशने । १०८
भेदः साक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत् ॥
१०६ सधर्मणैव साध्यस्य साधर्म्यादविरोधतः ॥ १०९
स्याद्वादप्रविभक्तार्थविशेषव्यञ्जको नयः ॥
१०७ नयोपनयैकान्तानां त्रिकालानां समुच्चयः । ११०
अविभ्राड्भावसम्बन्धो द्रव्यमेकमनेकधा ॥



न	श्लोक	पृष्ठ
१०८	मिथ्यासमूहो मिथ्या चेन्न मिथ्यैकान्ततास्ति नः ।	१११
	निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत् ॥	
१०९	नियम्यतेऽर्थो वाक्येन विधिना वारणेन वा ।	११२
	तथान्यथा च सोऽवश्यमविशेष्यत्वमन्यथा ॥	
११०	तदतद्वस्तुवागेषा तदेवेत्यनुशासती ।	११३
	नसत्या स्यान्मृषावाक्यैः कथं तत्त्वार्थदेशना ॥	
१११	वाक्स्वभावोऽन्यवागर्थप्रतिषेधनिरङ्कुशः ।	११४
	आह च स्वार्थसामान्यं तादृग्वाच्यं खपुष्पवत् ॥	
११२	सामान्यवाग्विशेषे चेन्न शब्दार्थो मृषा हि सा ।	११५
	अभिप्रेतविशेषाप्तेः स्यात्कारः सत्यलाञ्छनः ॥	
११३	विधेयमीप्सितार्थाङ्गं प्रतिषेध्याविरोधि यत् ।	११६
	तथैवादेयहेयत्वमिति स्याद्वादसंस्थितिः ॥	
११४	इतीयमाप्तमीमांसा विहिता हितमिच्छताम् ।	११७
	सम्यग्मिथ्योपदेशार्थविशेषप्रतिपत्तये ॥	
११५	जयति जगति क्लेशावेशप्रपञ्चहिमांशुमान् ।	११७
	विहितविषमैकान्तध्वान्तप्रमाणनयांशुमान् ।	
	यतिपतिरजो यस्या धृष्यान्मताम्बुनिधेर्लवान्	
	स्वमतमतयस्तीर्थ्या नाना परे समुपासते ॥	

इति ।

विषयसूची



इति

इतीयमाप्तमीमांसा विहिता हितमिच्छता।
सम्यङ्मिथ्योपदेशार्थविशेषप्रतिपत्तये ॥ ११४ ॥

अर्थ—इति कहिए ऐसैं दस परिच्छेद स्वरूप यह आप्तमीमांसा सर्वज्ञ विशेषका परीक्षा है सो हितकूं इच्छते जे भव्यजीव तिनकैं सम्यक् उपदेश अर मिथ्या उपदेश तिनका विशेष सामर्थ्य असत्यार्थ ताकी प्रतिपत्ती हेय उपादेयरूप जानना। श्रद्धान करणा आचारण करणा ताके अर्थि हम रचा है ऐसैं आचार्य्यनिनैं अपना अभिप्रेत प्रयोजन कह्या है। सो आर्य सत्पुरुषनिकै विचारने योग्य है तहां हित तो मोक्ष तथा तिसका कारण सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र जानना। बहुरि सम्यक् उपदेशतौ मोक्षका कारण सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्रका कहना है। बहुरि मिथ्या उपदेश ज्ञान ही तैं मोक्ष है इत्यादि कहै हैं। बहुरि शास्त्रका आरंभ विषैं आप्तका स्तवन मोक्ष मार्गके नेता कर्म्मभूभृतके भेत्ता विश्वतत्वके ज्ञाता ऐसा किया ताका यह परीक्षा करी है याही तैं याका नाम आप्तमीमांसा है। देवागम आदि अक्षरके नामसे देवागम स्तोत्र है। ऐसैं जानना। आप्तका परीक्षा की विशेष चरचा जान्या चाहौ तो अष्टसहस्री तैं जानियो यहां अर्थ संक्षेप लिखा है ॥ ११४ ॥

जयति जगति क्लेशावेशप्रपञ्च हिमांशुमान्,
विहतविषमैकान्त ध्वान्त प्रमाणनयांशुमान्।
यतिपतिरजो यस्या धृष्यान्मताम्बुनिधेर्लवान्,
स्वमतमतयस्तीर्थ्या नानापरे समुपासते ॥[1]

1 यह पद्य वसुनन्दि सैद्धान्तिककृतवृत्तिके अन्तमें ग्रंथ समाप्तिका मंगलाचरण रूप है। परन्तु पं० जयचंदजी छावड़ानें इसका भाषा वचनिका नहीं लिखी है। शायद अष्टसहस्री कारके मतके अनुसार ग्रंथकर्ताकी कृति नहीं समझ कर पं० जयचंदजीने भाषा वचनिका करनेसे इसे छोड़ दिया हो।

गाथा ॥

ज्ञान अज्ञान मोक्ष अरु बन्ध । सतविधि उत्पत्ती सबध ॥
नय प्रमाण इन सबकी रीति स्याद्वाद भाषी मुनि नीति ॥ १

इति श्री आप्तमीमांसा नाम देवागमस्तोत्रकी देश भाषा मय
वाचनिका विषै दसमा—परिच्छेद समाप्त भया ॥१०॥
यहां ताईं कारिका एकसौ चौदह भइ ॥ ११४ ॥

सवैया २३ सा ॥

घाति निवार भये अरहन्त अघातिनिवारि सुसिद्ध कहाए ।
पंच अचार समारि अचारिज भव्यनि तारतते श्रुत गाय ॥
अग उपग पढै उवझाय पढाय वण शिव राह लगाय ।
साधु सबै गुणमूलधरै तन साधय मोक्ष नमौं मन भाये ॥ १ ॥

। दोहा ।

मगल कारण पंच गुरु । नमौं विघनकी हानि ।
ग्रन्थ अंति मगल अरथ । नमस्कार ममजान ॥ २ ॥
समतभद्र अकलंक पुनि । विद्यानदि सुजानि ।
इनके चरन नमौं सदा । साधुत्रयी गुणखानि ॥ ३ ॥

सवैया २३ सा ॥

देश दुढाहर जैपुर थान महान नरेश जगश विराज ।
न्याय चलैं सवलोक भलैं विधि वात्सल है सुख सों डर भाजे ।
जैन जनाव इते तिनमैं जु अध्यातम शैलि भली सुसमाजे ।
हौं तिनमैं जयचद सुनाम लियो यह काम पढो निज काजैं ॥४॥

दोहा ॥

अष्टा दश सत साठि पर विक्रम सम्वतजानि ।
चैत्र कृष्णचोदस दिवस पूण वाचनिका मानि । ५ ॥

इति ।